मुद्रक और प्रकाशक
जीवणजी डाह्याभाओ देसाओ
नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद – १४

पहली आवृत्ति ५०००

८० नये पैसे

दिसम्बर, १९५९

अर्पण

भारतके दो ध्रुवोंके समान
शान्तिनिकेतन और सेवाग्रामको

यह निर्विवाद है कि टागोर और गांधी बीसवीं सदीके अिस पूर्वार्द्धके दो महान और प्रभावशाली पुरुष हैं। अिन दोनोंकी तुलना बोधप्रद सिद्ध हो सकती है। पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा और स्वभावकी दृष्टिसे अन्य कोअी भी दो व्यक्ति अेक-दूसरेसे अितने भिन्न नहीं हो सकते थे, जितने टागोर और गांधीजी थे। अमीर कलाकार होते हुअे भी गरीबोंके प्रति हमदर्दी होनेके फलस्वरूप प्रजावादी बने हुअे टागोर तत्त्वतः भारतकी सांस्कृतिक परम्पराके — जीवनके प्रत्येक व्यवहारमें रस लेनेकी और जीवनका आनन्द भोगते-भोगते जीवन व्यतीत करनेकी परम्पराके — द्योतक थे। गांधीजी, जो अधिक मात्रामें भारतकी प्रजाके और लगभग भारतके किसानके मूर्तरूप बन गये थे, भारतकी दूसरी प्राचीन परम्पराके — त्याग, तप और संयमकी परम्पराके — प्रतिनिधि थे। अैसा होते हुअे भी टागोर मुख्यतः विचारक थे। और गांधीजी पक्के कर्मयोगी तथा प्रवृत्ति-परायण पुरुष थे। दोनों अलग अलग ढंगसे विश्वव्यापी दृष्टिवाले थे; और अैसा होते हुअे भी दोनों पूरे पूरे भारतीय थे। दोनों भारतके दो भिन्न किन्तु सुसंवादी पहलू पेश करते हों और अेक-दूसरेके पूरक हों, अैसा मालूम होता था।

— **जवाहरलाल नेहरू**

लेखकका निवेदन

हिन्दीमें 'गांधीजी और गुरुदेव' के नामसे प्रकाशित हो रही अिस लेखमालाका आरम्भ अनोखे ढंगसे हुआ था। ३० जनवरी, १९४८ को गांधीजीका स्वर्गवास हुआ। अुसके बाद अेक शामको जीवनमें विरल अवसरों पर ही अनुभवका विषय बननेवाली भक्तिभाव-पूर्ण अवस्थामें लीन होकर मैं गांधीजीके जीवनके विविध पहलुओंका विचार कर रहा था। कुछ समय बाद मैं अुसी भक्तिभावसे गुरुदेवके विषयमें भी विचार करनेको प्रेरित हुआ। और तुरन्त ही किसी अदृश्य भूमिकामें से प्रेरणा ग्रहण करके अंग्रेजीमें मेरा विचार-प्रवाह बहने लगा। अुन विचारोंको मैंने अुसी समय शब्दबद्ध कर लिया। अिस प्रकार अिस पुस्तकमें छपे 'प्रास्ताविक' नामक पहले लेखका जन्म हुआ।

यह पहला लेख श्री नवीन गांधी और श्री धीरेन गांधीके पढ़नेमें आया। अुस समय ये दोनों भाअी गुजरातीमें 'प्यारा बापु' नामक मासिक निकालनेकी योजना पर विचार कर रहे थे। अुन्होंने सुझाया कि मैं अिसी तरह गांधीजी और गुरुदेवके विचारोंका तुलनात्मक विवेचन करनेवाली लेखमाला जारी रखूं, तो आम जनताके लिअे वह लाभकारी साबित होगी।

यह विचार मुझे अच्छा लगा। दोनों महापुरुषोंके पवित्र स्मरणकी भावनासे आत्मा पुलकित हुअी। अिस तरह हर महीने जब कभी मुझे भीतरसे प्रेरणा होती मैं अेक ही बैठकमें अेक लेख गुजरातीमें लिखने लगा। ये सारे लेख गुजरातीमें ही लिखे गये और 'प्यारा बापु' में छपे। अिन्हें लिखते समय मैंने गांधीजी और गुरुदेवके बारेमें पहलेसे सोच-विचार कर लिखनेकी कोअी योजना नहीं बनाअी थी। भीतरसे अन्तरात्माकी जैसी प्रेरणा होती वैसा ही मैं लिख डालता था। अतः अिस लेखमालामें जिन विचारोंका विवेचन सूत्ररूपमें हुआ

है, वे अुस अुस समयके मेरे चिन्तन और मननके परिणाम हैं। गांधीजी और गुरुदेवके जिन आदर्शों और विचारोंने मेरे जीवन पर सूक्ष्म रीतिसे गहरा प्रभाव डाला, अुन्हीं पर मेरा चिन्तन केन्द्रित होता था और अुसीको मैं शब्दबद्ध कर लेता था।

अिस दृष्टिसे देखते हुअे यह लेखमाला मेरे अल्पज्ञानसे मर्यादित है। अिसलिअे अिसमें जो भी दोष होंगे वे मेरे अपने दोष माने जायंगे।

गुजरातीमें यह लेखमाला 'गांधी-गुरु' के नामसे पुस्तक-रूपमें प्रकाशित हुअी थी। अब नवजीवन ट्रस्ट अिसका हिन्दी संस्करण निकाल रहा है, अिसके लिअे मैं ट्रस्टका हृदयसे आभार मानता हूं। श्री काकासाहब कालेलकरने अिस पुस्तककी प्रस्तावना लिखकर मुझे कितना आभारी बनाया है, अिसे शब्दोंमें प्रकट करनेमें मैं असमर्थ हूं। अिसके लिअे मैं अुन्हें कृतज्ञतापूर्वक सादर और सप्रेम प्रणाम करता हूं। मेरी सूचनासे हिन्दी अनुवाद भाअी श्री सोमेश्वर पुरोहितने किया है, जिससे मुझे पूरा सन्तोष है। अिसके लिअे मैं अुन्हें अन्तःकरणसे धन्यवाद देता हूं।

आशा है यह हिन्दी संस्करण गांधीजी और गुरुदेवको अेकसाथ समझनेमें भारतीय जनताकी किंचित् सेवा करेगा और अभ्यासीजनोंको दोनों महापुरुषोंका अधिक गहरा अभ्यास करनेकी प्रेरणा देगा।

हरिजन आश्रम, साबरमती — **गुरुदयाल मल्लिक**

१–१२–१९५९

भक्तकी अंजलि

महात्मा गांधी और कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर हमारे जमानेके दो महापुरुष हैं, भारतीय संस्कृतिके दो महान दिग्गज हैं। अुनके विषयमें कोअी भी कुछ लिखे तो वह आकर्षक होगा ही। परन्तु जब भक्त-हृदय गुरुदयाल मल्लिक लिखें तब तो पूछना ही क्या? गुरुदयाल —चाचाजी— गांधीजीके घनिष्ठ सम्पर्कमें आये थे। ये अुन्हींके परिवारके माने जायंगे। और कविवर रवीन्द्रनाथके तो वे असीम भक्त ठहरे।

वैष्णव भक्त जिस प्रकार मर्यादा-पुरुषोत्तम रामचन्द्र और लीला-विग्रही कृष्णचन्द्रके बीच अभेद देख सकते हैं, अुसी प्रकार गुरुदयालजी भी गुरुदेव और गांधीजीके बीच अभेद देखते हैं। अपनी यह अभेद-दृष्टि अुन्होंने अिस छोटीसी लेखमालामें अनेक प्रकारसे स्पष्ट की है।

वह भी अिस हद तक कि गांधीजीने जब ब्रिटिश हुकूमतके साथ असहयोग करनेका आन्दोलन छेड़ा, तब गुरुदेवने क्रुद्ध होकर अुसका कड़ेसे कड़ा विरोध किया; परन्तु अिसे बिलकुल भूलकर मल्लिकजी अुस घटनाको भारपूर्वक सामने लाये हैं, जब स्वदेशी-आन्दोलनके दिनोंमें रविबाबूने ब्रिटिश सरकारके साथ अपना सम्बन्ध तोड़ दिया था। मैं नहीं मानता कि कवीन्द्रके अनुयायी अथवा आजके जमानेका अितिहास लिखनेवाले अितिहासकार मल्लिकजीके साथ अिस विषयमें सहमत होंगे। परन्तु मल्लिकचाचा अितिहासकार नहीं हैं। वे तो भक्त हैं और कवि हैं। और कवियोंका तो यह कुलव्रत ही होता है कि जहां तीव्र भेद दिखाअी देता हो वहां भी साधर्म्य ढूंढ़ कर दुनियाको चकित कर देना।

असहयोगका अुदाहरण हम छोड़ दें। महात्मा और कवीन्द्रके बीचके स्वभाव-भेद और वृत्तिभेदको हम स्वीकार करें, तो अिन दो महापुरुषोंके बीच दृष्टिसाम्य और आदर्श-साम्य भी कम नहीं था। अिस साम्यकी ओर पाठकोंका ध्यान खींचकर गुरुदयालजीने आजके जमाने पर बहुत बड़ा अुपकार किया है।

कहा जाता है कि ग्रीक दार्शनिक प्लेटोने अपने विद्यागुरु सॉक्रेटीसके संवाद लिखते हुओ अपना तत्त्वज्ञान ही पेश किया है। अिस लेखमालामें मल्लिकजीने गांधीजी और ठाकुर दोनोंका जैसा चित्र देखा वैसा तो हमें देखनेको मिलता ही है, परन्तु अुसके साथ हम प्रत्यक्ष मल्लिकजीका चित्र भी सुन्दर रीतिसे देख सकते हैं। कहा जाता है कि प्रयागके पास गंगा-यमुनाके संगममें सरस्वती गुप्त रूपसे मिल जाती है। प्रस्तुत लेखमालामें गांधीजी और गुरुदेवके संगमके साथ मल्लिकजी भी मिलकर त्रिवेणी बना रहे हैं, यह खोज निकालनेमें कठिनाअी नहीं होती।

अिस लेखमालाके शीर्षक देखकर ही हमें पता चल जाता है कि मल्लिकजीकी दृष्टिमें जीवनके कौनसे पहलू सबसे अधिक महत्त्व रखते हैं।

गांधीजीकी विभूति जितनी स्पष्ट और प्रकट है, अुतनी ही रवीन्द्रनाथकी भी है। भावी पीढ़ियां अिन दोनों महापुरुषोंको स्वतंत्र रूपसे समझनेका प्रयत्न करेंगी। दोनोंने केवल अपने ही देश पर नहीं, परन्तु सारी दुनिया पर प्रभाव डाला है। रवीन्द्रनाथने अपनी अलौकिक कल्पना-शक्तिकी सहायतासे जीवनका रहस्य खोज निकाला और विविध प्रकारसे आकर्षक रूपमें अुसे दुनियाके सामने रखा। गांधीजीने अपनी अलौकिक श्रद्धा और वीरवृत्तिसे मानवताकी सेवा करनेका पुरुषार्थ किया और अिस प्रकार मानव-जातिको अूपर चढ़नेकी तथा जीवन-रहस्यके पीछे रहे सत्यका साक्षात्कार करनेकी साधना बताअी। दोनोंके अिस सन्देशको आजका मानव-समाज धीरे-धीरे समझने लगा है और कृतज्ञतापूर्वक अुसे स्वीकार करने लगा है।

अैसी अिन दो महान विभूतियोंका अेकसाथ स्मरण करना अत्यन्त आनन्ददायक है और पावन भी है। गुरुदयाल चाचाजीने अेक सुन्दर विषयका आरंभ कर दिया है। हम आशा करें कि अनेक लोग अिस विषय पर लिखेंगे और अिसे आगे बढ़ायेंगे।*

स्वातंत्र्य-दिन
१५–८–'५५

काका कालेलकर

---

* मूल प्रस्तावना गुजरातीमें थी।

अनुक्रमणिका

गांधीजी और गुरुदेव

१. प्रास्ताविक

गांधीजी अुदात्त और अुत्तम जीवनमें मूर्त हुअी भगवद्‌गीता थे; गुरुदेव अुपनिषदोंकी सचित्र आवृत्ति थे। अेक धर्मके अुपासक थे, तो दूसरे सौन्दर्यके अुपासक थे। परन्तु दोनों साथ ही साथ, यद्यपि अलग अलग कोनोंमें, अेक ही सत्यके मन्दिरमें अुपासना करते थे।

गांधीजीने सेवाका संगीत चरखेकी धुनके साथ गाया; गुरुदेवने अपना जीवन संगीतकी सेवामें व्यतीत किया। अेकने मनुष्य-जातिके सन्तप्त हृदयको आश्वासन दिया; दूसरेने मनुष्यकी आत्माको आनन्द प्रदान किया। परन्तु दोनों अेक ही साथ प्रेमके सुन्दर और मोहक वर्तुलमें घूमे।

गांधीजीने नीतिके अनन्त मार्ग पर चलते-चलते प्रभुका मार्ग ग्रहण किया; गुरुदेवने प्रेमके सान्निध्यमें आनन्दसे नृत्य किया और प्रभुके हृदयका गुप्त मार्ग खोज निकाला।

अेकने कमलमें बिजलीका जो बाण है अुस पर अपना ध्यान लगाया; दूसरेने बिजलीके बाणमें जो कमल है अुस पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। परन्तु दोनोंने सत्यके दो पहलुओं — मृदु और रुद्र, नम्र और शक्ति-शाली — का ज्ञान प्राप्त किया।

गांधीजीकी दृष्टिमें यह दुनिया प्रभुका अेक कार्यालय था; गुरुदेव अिस जगतको भगवानका अेक अुद्यान मानते

थे। परन्तु दोनोंने निरन्तर कार्यमय जीवन विताया। अेकका कार्य था आनन्दमय बनानेका; दूसरेका कार्य था आनन्द अुत्पन्न करनेका।

गांधीजी मानते थे कि व्यक्तिकी समस्या जगतकी समस्या है; गुरुदेव मानते थे कि जगतकी समस्या व्यक्तिकी समस्या है। परन्तु दोनों जानते थे कि जीवन अेक सीधी लकीर नहीं बल्कि गोल वर्तुल है।

अेकने अैसा माना कि जीवन संगमरमरकी स्थूल राशि है; दूसरेने यह माना कि जीवन प्रेमका अभिसार है। अतः गांधीजीने अुस अनगढ़े ढेरमें से कुशल मूर्तिकारकी तरह अेक सुन्दर मूर्तिका निर्माण किया; जब कि गुरुदेवने फ़ूलोंको चुनकर अपनी प्रियाकी वेणीमें अुन्हें सजाया। परन्तु दोनोंने जीवनको स्वीकार किया। अेकने सेवकके रूपमें, दूसरेने संगीतकारके रूपमें। अेकने दासीके रूपमें, दूसरेने कुमारीके रूपमें।

अिस प्रकार गांधीजी और गुरुदेव प्रभुके हृदयके अुद्यानमें पल-पुसकर बड़े हुअे। अुनके मन मानव-मन थे। अतः दोनोंके जीवनकी सुवास अुसी तरह अमर रहेगी जिस तरह भगवान अमर है।

२. सत्य

सत्य क्या है? अुसकी व्याख्या कौन दे सकता है? केवल सत्य ही दे सकता है? जिस प्रकार सूर्यकी ज्योति और तापकी कल्पना सूर्यको देखनेसे ही आ सकती है, अुसी प्रकार जिन लोगोंको सत्यका प्रत्यक्ष दर्शन हुआ है वे ही कह सकते हैं कि सत्य क्या है। परन्तु वे भी सत्यकी सम्पूर्ण कल्पना नहीं करा सकते। अिसीलिअे अेक वार गुरुदेवने अेक विद्यार्थीकी हस्ताक्षर-पुस्तिकामें लिखा था: "सत्यको महापुरुषोंने जिस रूपमें जाना है, अुससे भी वह अधिक गूढ़, अधिक रहस्यमय है।"

साधारण लोगोंकी दृष्टिमें जो कुछ सर्वोत्तम है, अुसीको वे सत्य कहते हैं। फिर भी बहुत बार वे सत्य और प्रभुके वीच भेद करते हैं। परन्तु गांधीजी तो यही कहते थे कि सत्य ही प्रभु है — परमेश्वर है। जिस प्रकार समुद्र-तटके समीप रहनेवाले पानीका सम्बन्ध सम्पूर्ण समुद्रके समूचे पानीके साथ होता है, दोनोंमें अेक ही गुण होता है; अुसी प्रकार प्रत्येक सत्यमें प्रभुका आभास — प्रभुका र्शन — होता है।

सत्यके दो पहलू हैं: अेक निकटका, दूसरा दूरका। अिसीलिअे अुपनिषद्में अेक स्थान पर कहा गया है कि सत्य निकट भी है और दूर भी है। अिसका अर्थ अैसा किया गया है कि सत्यमें निकट और दूर दोनोंका

समन्वय और समावेश होता है। अिस परसे यह अनुमान किया जा सकता है कि जो निकट है अुसका दूरके साथ सम्बन्ध है।

गांधीजी जो निकटका था अुस पर अधिक ध्यान देते थे; गुरुदेव जो दूरका था अुस पर अधिक ध्यान देते थे। अिसका कारण यह था कि दोनोंका स्वभाव भिन्न था। परन्तु दोनों अन्तमें सत्यके समन्वयकी दिशामें पहुंचे।

गुरुदेवने अपनी अेक कवितामें कहा है कि "तू घोंसला है और आकाश भी है।" अिसका अर्थ अैसा घटाया जा सकता है कि जो घोंसलेमें रहता है, अुसे जीनेके लिअे आकाशके विस्तारकी भी जरूरत रहती ही है; और जो आकाशमें अुड़ता है, अुसे विश्रामके लिअे घोंसलेकी जरूरत रहती ही है।

सत्यका दर्शन करनेके लिअे गुरुदेव धरती पर चलनेकी अिच्छा या वृत्ति नहीं रखते थे। गुरुदेव कवि थे। और कविकी वृत्ति अर्थात् विहंगकी वृत्ति — व्योम-विहारकी वृत्ति। परन्तु गांधीजी प्रयोग-शालामें अपने प्रयोग करनेवाले किसी वैज्ञानिककी तरह हर कदम पर जो कुछ जानने जैसा होता अुसे जान लेनेके बाद ही आगे कदम बढ़ाते थे।

सत्यके दो रूप हैं। अेक रूप तपस्याका और दूसरा रूप आनन्दका। गांधीजी सत्यको तपस्याके रूपमें देखते थे; गुरुदेव सत्यको आनन्दके रूपमें देखते थे।

यदि गुरुदेवसे कहा गया होता कि आप बुद्धकी मूर्ति बनाअिये अथवा अुनका चित्र अंकित कीजिये, तो वे अैसी मूर्ति या चित्र बनाते जिसमें बुद्धके मुख पर विराजमान शान्तिकी——अुस शान्तिकी जिसे मनुष्य जीवन-संग्राममें विजयी होकर ही प्राप्त करता है——झलक देखनेवालेको मिल सके। जब कि गांधीजी बुद्धकी मूर्ति या चित्र द्वारा देखनेवालेको अिस बातका दर्शन कराते कि बुद्ध अुन कमजोरियोंके साथ लम्बे समय तक किस तरह युद्ध करते रहे, जो कदम-कदम पर मनुष्यके अलग अलग कामोंमें दिखाअी देती हैं।

अपने अपने दृष्टिकोणके अनुसार गांधीजी और गुरुदेव दोनोंने सत्यका अेक अेक पहलू दुनियाको दिखाया।

अिस सत्यके जो दो पहलू हैं, अुन दोनों पहलुओंके बीच जो सम्बन्ध है तथा अुन दोनोंको अेक-दूसरेकी जो आवश्यकता रहती है, अुसके विषयमें मध्ययुगके अेक कविने बड़े सुन्दर ढंगसे अेक गीतमें अपने विचार प्रकट किये हैं:

कवि——घोंसलेमें तू रैन गवाया, कहां रहा तेरा गाना?
अब तो सूरसे गगन छाया रे, तिमिर हुआ अवसाना।
रैन चैन तोर घोंसलेमें रे, गगनमें तू क्यों माता?
अगम अथाह अति गभीरा, अुसमें क्या सुख पाता?
पक्षी——हदसे हदमें दिन बीता जब, भोग बहुत हम पाया,
हदसे अहदमें जब मैं डूबा, तब ही आपा पाया।

३. धर्म

गांधीजी और गुरुदेव दोनों धर्म-परायण थे। गांधीजीका जीवन-पथ नीतिका था और गुरुदेवका जीवन-पथ प्रीतिका था। यही कारण है कि गांधीजीको भगवद्गीता बहुत प्रिय थी, और गुरुदेवको अुपनिषद् बहुत प्रिय थे। परन्तु नीति और प्रीति दोनों अेक ही जीवन-सिक्केके दो पहलू हैं। जब अेक व्यक्तिका सम्बन्ध दूसरे व्यक्तिसे जुड़ता है, तभी नीति और प्रीतिका अुद्भव होता है। अगर कोअी आदमी जंगलमें जाकर रहे, तो अुसे नीति-शास्त्र जानने या रचनेकी जरा भी जरूरत नहीं पड़ती। अुसका मन ही अुसका मालिक होता है। परन्तु जिस क्षण वह दूसरे आदमीके सम्पर्कमें आता है, अुसी क्षण अुसे अपने और दूसरेके मनके बीच अेक पुल बांधनेकी जरूरत महसूस होती है। यदि यह पुल वह न बांधे, तो दोनोंका आपसी व्यवहार असंभव हो जाय। अिसलिअे दूसरे व्यक्तिके साथ नीति अथवा प्रीतिका मार्ग अपनाये सिवा अुसके सामने और कोअी चारा नहीं रह जाता।

प्रीति और नीति दोनों धर्मवृक्षकी जड़ें हैं। और अिसी तरह हम यह भी कह सकते हैं कि समस्त संसारका जो मूल है, व्यक्तिगत जीवनका जो मूल है, वही धर्म है। धर्मका अैसा अर्थ किया गया है: सारे जगतको धारण करनेवाली वस्तु, नियम अथवा

विभूतिका नाम धर्म है। गांधीजीकी दृष्टिमें ब्रह्माण्डको धारण करनेवाली परम नीतिमय शक्ति ही सत्य है; और गुरुदेवकी दृष्टिमें जगतको धारण करनेवाली परम विभूति ही प्रीतिमय परम पुरुष है। मानवका सारे ब्रह्माण्डके साथ सम्बन्ध जोड़नेके लिअे अुसे नीतिके मार्ग पर ले जानेवाली जो साधना है, अुसीमें मनुष्यका धर्म समाया हुआ है। जब तक अुसे अैसी साधना करनेकी प्रेरणा नहीं होती, तब तक वह धर्ममय नहीं बन सकता।

सत्यको समझनेका मार्ग नीति है और परम पुरुषको पहचाननेका मार्ग प्रीति है। हरअेक मनुष्यका अपना मार्ग होता है। अिसीलिअे धर्मके अनेक रूप, सत्यकी असंख्य व्याख्यायें और परम पुरुषके अगणित वर्णन देखने सुननेमें आते हैं। परन्तु अन्तमें ये भिन्न भिन्न मार्ग अेकमें ही केन्द्रित होते हैं — जिस प्रकार सारी नदियां समुद्रकी ओर बहकर अन्तमें अुसीमें लीन हो जाती हैं। परन्तु प्रत्येक व्यक्ति अथवा जातिको यह भूलना नहीं चाहिये कि अुसका धर्म कभी पूर्णताको प्राप्त नहीं कर सकता, क्योंकि पूर्ण तो केवल मौलिक, सार्वभौमिक सत्य या परम पुरुष ही है। जिस प्रकार कहानीके छह अन्धोंका हाथीके सम्बन्धमें किया हुआ वर्णन अधूरा था, अुसी प्रकार हमारे अलग अलग धर्म भी अपूर्ण ही हैं। परन्तु अितना सच है कि प्रत्येक धर्ममें अनंतता, शाश्वतता और सत्यका कुछ न कुछ अंश जरूर होता है।

अेक महापुरुषका वचन है कि मनुष्य केवल अन्नसे नहीं जीता। अिसका भावार्थ अितना ही है कि अपने जीवनको सर्वांगीण बनानेके लिअे अन्नकी अपेक्षा मनुष्यको अेक अधिक महत्त्वकी वस्तुकी जरूरत है। और वह वस्तु है — धर्म।

हर धर्मके दो अंग होते हैं: अेक मर्म और दूसरा कर्म। मर्मका अर्थ है मौलिक सत्यसे सम्बन्ध रखनेवाले विचार; और कर्मका अर्थ है अुन विचारोंको अपने जीवनमें बुननेकी रीति। ये दो अंग पक्षीके दो पंखोंकी तरह हैं। जैसे पक्षी अेक पंखसे अुड़ नहीं सकता, वैसे ही किसी भी धर्मका अनुयायी अिन दोनों अंगों — कर्म और मर्म — के बिना जीवन-सत्यको पहचान नहीं सकता।

४. आराधना

अेक धर्मशास्त्रमें लिखा है कि जो असीम है अुसे सीमाबद्ध करना पाप है। अिसीलिअे तो प्रत्येक महापुरुष अपने जीवनमें अेक अैसी खिड़की हमेशा खुली रखता है, जिसके जरिये अुसका सम्बन्ध असीमके साथ सदा बना रहता है।

परन्तु सामान्य मनुष्य तो सीमामें ही बंधा रहना पसन्द करता है। अुसका घर अुसका अखिल जगत है, अैसा वह मानता है और अुसीके अनुसार वह चलता भी है।

अुसका अैसा आचरण पूजाविधिके क्षेत्रमें विशेष रूपमें दिखाअी पड़ता है। मूर्तिके बिना मनुष्यका काम नहीं चलता। अिसलिअे वह मूर्तिका अुपासक बन जाता है। अिस प्रकार जो असीम है, निराकार है, अुसे मनुष्य आकारमें सीमित करके — विशेष आकार देकर — बन्द कर रखता है। अिस कारणसे यदि वह सावधान न रहे, तो अुसकी दृष्टि संकुचित बन जाती है। अिसका परिणाम यह होता है कि किसी अेक मूर्ति या मन्दिरके अुपासकों और दूसरी किसी मूर्ति या मन्दिरके अुपासकोंके बीच विसंवाद, मतभेद अुत्पन्न होता है। और वह अिस हद तक अुग्र बन जाता है कि कभी कभी तो वे मार-काट करने पर भी तुल जाते हैं। अैसी मार-काटका वर्णन हम अनेक देशोंके मानव-अितिहासमें पढ़ते हैं।

अैसी संकुचित दृष्टिसे बचनेका अेक मार्ग है। वह है सीमितमें असीमको देखनेकी साधना करना। यही सच्चा धर्म है। बिन्दुमें सिन्धुके दर्शन करना, ‘पिण्डमें ब्रह्माण्ड’को देखना, व्यक्तिमें समष्टिको निरखना ही धर्मका सच्चा ध्येय है।

गांधीजी और गुरुदेव दोनों अैसे धर्मके अनुयायी थे। अिसीलिअे तो दोनों मूर्तिपूजाके खिलाफ आवाज अुठाते थे, मूर्तिपूजाका विरोध करते थे।

मूर्तिपूजासे क्या लाभ है, यह भी दोनों भलीभांति जानते थे। छोटे बच्चेको लिखना सिखाते समय दो

लकीर खींचकर लिखवाना जरूरी होता है, ताकि वह दोनों लकीरोंके बीच अच्छी तरह वर्णमाला लिख सके। परन्तु जब अुस बालकका हाथ अच्छी तरह सध जाता है, बोलचालकी भाषामें कहें तो जब अुसका हाथ 'पक्का' हो जाता है, तब अुसे दो लकीर खींचकर लिखनेकी जरूरत नहीं रह जाती। यही वस्तु गांधीजी और गुरुदेवकी दृष्टिसे मूर्तिपूजाके बारेमें भी सच है। यदि मूर्तिका अुपयोग केवल असीमका ध्यान धरनेके लिअे ही किया जाय, तो अुसमें कोअी हर्ज नहीं। परन्तु मनुष्य बहुत बार अैसा समझता है कि जिस मूर्तिकी वह पूजा करता है वह मूर्ति ही अुसका सर्वस्व प्रभु है!

अिसी कारणसे गांधीजी और गुरुदेव मूर्तिपूजाके बारेमें लोगोंको किसी भी तरहका प्रोत्साहन कभी नहीं देते थे। अिसलिअे गांधीजीका राम केवल रामायणका या अयोध्याका ही राम नहीं था, परन्तु अखिल ब्रह्माण्डका राम था। अिसी प्रकार जब ब्रह्मसमाजके अनुयायियोंको अैसा लगने लगा कि ब्रह्म तो केवल हम लोगोंके मन्दिरमें ही विहार करता है, तब गुरुदेव ब्रह्मसमाजसे बाहर निकल गये।

बुद्ध भगवानके शब्दोंमें धर्मकी अेक व्याख्या है 'ब्रह्म-विहार'—वह ब्रह्म जो सर्वत्र और सबमें विहार करता है। अैसा होनेसे अुस ब्रह्मको केवल अपनी छोटीसी कोठरीमें बन्द कर रखना पाप है; यह विशाल समुद्रके पानीको अपने अेक छोटेसे लोटेमें बन्द करने जैसा प्रयत्न है—जो सचमुच असम्भव है!

५. ब्रह्मचर्य

गांधीजी और गुरुदेव दोनोंका ब्रह्मचर्यमें अगाध विश्वास था। क्योंकि वे बचपनसे यह जान गये थे कि अुनके जीवनका ध्येय सदा ब्रह्ममें 'आचरण करना' है।

ब्रह्मके दो पहलू हैं: प्रेम और नियम। अथवा अुसके दो रूप हैं: सौन्दर्य और सत्य। परन्तु दोनोंके दर्शनके लिअे संयमकी आवश्यकता है। सामान्यतः लोग अैसा मानते हैं कि जो मनुष्य सौन्दर्यका अुपासक है, अुसे संयमकी आवश्यकता नहीं है। यह सचमुच बहुत बड़ी भूल है। क्योंकि सौन्दर्यका आधार भी सत्यकी तरह संयम ही है। फर्क केवल अितना ही है कि कलाकार या कवि संयमको छन्द कहता है और सत्यका अुपासक अुसे नियम कहता है।

अिस प्रकार गांधीजीको और गुरुदेवको ब्रह्मचर्यके दर्शनके लिअे जीवनमें संयमका महत्त्व समझमें आ गया था। गुरुदेवने सौन्दर्यके द्वारा अपने जीवनमें अिस संयमका विकास किया था; और गांधीजीने धर्म, कर्म और व्रतों द्वारा अिस संयमको आत्मसात् किया था। अन्तमें तो दोनोंने 'ब्रह्म-विहार' — ब्रह्म-निर्वाण — प्राप्त किया।

'ब्रह्म' और 'भ्रम' अिन दोमें अितना ही भेद है कि 'ब्रह्म'में संयमका समावेश होता है और 'भ्रम'में अुस संयमका भंग होता है। 'भ्रम'का कारण बहुत बार अेक या दूसरे प्रकारका गुप्त अथवा प्रकट स्वार्थ होता

है; और अुस स्वार्थके कारण सत्य या सौन्दर्य पर अेक आवरण चढ़ जाता है।

गांधीजीने शारीरिक और मानसिक संयमों पर अधिक जोर दिया; और गुरुदेवने आत्माको पहचाननेके लिअे आवश्यक संयमों पर अधिक जोर दिया। अुनकी दृष्टिमें सौन्दर्यकी अुपासना आत्मज्ञानका सरल मार्ग था। अिसलिअे अुन्होंने अैसी साधना की, जिससे संगीत, कला आदिका विकास हो।

अेक अंग्रेज कविने कहा है कि जिस मनुष्यमें संगीतको जन्म देनेकी अथवा संगीतका आनन्द अनुभव करनेकी वृत्ति या शक्ति नहीं है वह कपटी होता है। अिसका अर्थ अितना ही है कि अैसे मनुष्यमें संयम नहीं होता। जब मनुष्यके जीवनमें संयमका अभाव होता है, तभी अुसके जीवनमें कुटिलता अथवा क्रूरता आती है।

शारीरिक और मानसिक व्रतों, तपों, संयमोंसे वही फल मिलता है, जो सौन्दर्यकी सच्ची अुपासना करनेसे मिलता है। अिसीलिअे कलाकार और सन्त अेक ही कोटिके माने जाते हैं।

शारीरिक और मानसिक तपसे जो प्रकाश देखा जाता है, वही प्रकाश सौन्दर्यका अुपासक भी देख सकता है। कारण यह है कि वह ज्योति, वह प्रकाश, ब्रह्मका स्वरूप है। हम अैसा भी कह सकते हैं कि जहां जहां ज्योति विद्यमान है, वहां वहां ब्रह्मका विहार या आचरण होता है।

आजकल ब्रह्मचर्यका पालन नहीं होता। अिसीलिअे असंयम, अशांति और 'असुन्दरता'की वृद्धि हो रही है। गांधीजी और गुरुदेव दोनों हमें सिखा गये हैं कि जीवनमें ब्रह्मचर्यकी आवश्यकता है — बहुत बड़ी आवश्यकता है।

६. प्रार्थना

गांधीजी अकसर कहा करते थे कि मैं अन्नके बिना तो थोड़े दिन जी भी सकता हूं, परन्तु प्रार्थनाके बिना पलभर जीना भी मेरे लिअे असंभव है। अिसी प्रकार गुरुदेव भी प्रतिदिन सुबह-शाम प्रार्थना करनेके महत्त्वको समझते थे। यहां तक कि अंतिम दिनोंमें जब अुन्हें अतिशय शारीरिक कष्ट भोगना पड़ा, तब भी अुन्होंने प्रतिदिन मौनमें बैठनेकी अपनी आदत नहीं छोड़ी।

तो अिस प्रार्थनाका अर्थ क्या है? प्रार्थना शब्दका सामान्य अर्थ 'मांगना' किया जाता है। परन्तु क्या मांगना चाहिये और किससे मांगना चाहिये, अिन दो प्रश्नोंके सही अुत्तर पर प्रार्थनाके सत्यका आधार रहता है।

तब हम किससे अपनी आवश्यकताकी वस्तु मांगें? गुरुदेव और गांधीजीका यह विश्वास था कि अेक अैसा कानून या सृष्टिका करतार है, जो जगतमें हर व्यक्ति और समष्टिको प्रगति अथवा अुन्नति करनेकी प्रेरणा देता है। अुस कानून या करतारको सब कुछ मालूम

है और वह तीनों कालका ज्ञाता है। अुसका अुद्देश्य यह है कि सम्पूर्ण सृष्टिका अुच्चसे अुच्चतर और अुच्चतरसे अुच्चतम आध्यात्मिक तथा नैतिक विकास हो। यह विकास-वृत्ति ही मनुष्यका मूल प्राण है। और अिस विकाससे ही मनुष्यकी आत्माको सच्चा, समग्र अथवा सम्पूर्ण सन्तोष मिल सकता है। अिसलिअे मनुष्यको अेक ही वस्तुकी विशेष आवश्यकता है। वह यह कि मनुष्य अखिल ब्रह्माण्डके पति अथवा अखिल ब्रह्माण्डकी शक्तिसे अैसी विनती या प्रार्थना करे कि वह अुसे आध्यात्मिक और नैतिक विकासका मार्ग बताये। अिसके सिवा, ब्रह्माण्डके पीछे रहे व्यक्ति या शक्तिकी अिच्छा भी यही है। अिसीलिअे मनुष्य प्रार्थना करता है: 'प्रभो, तेरी अिच्छा पूर्ण हो!'

"तू ही सब कुछ जाने प्रीतम!
तेरी अिच्छा पूर्ण हो।

तू ही सबका प्राणाधार;
तू ही जगका मूल आधार;
तू ही सर्व सकल करतार,
तेरी अिच्छा पूर्ण हो।

मान अपमान दोनोंमें प्रीतम!
सुख दु:खमें भी मेरे —
जनम मरणमें भी मेरे प्रीतम!
तेरी अिच्छा पूर्ण हो।

चांद सूरजको तू ही चलावे,
फूल फलको तू ही फलावे;
अणु परमाणु तू ही नचावे,
तेरी अिच्छा पूर्ण हो।"

परन्तु प्रभुकी अिच्छा पूर्ण हो, अिसके लिअे मनुष्यको अपनी स्वार्थपूर्ण अिच्छाका क्षय करना होगा। अिसीलिअे हर धर्मकी मूलभूत साधना मनुष्यके अहंकारको घटानेके लिअे होती है। "Die unto thyself so that He may live in thee." (तू अपनेमें मर जा, जिससे प्रभु तुझमें आ वसे।) जब 'ममत्व' की मृत्यु होती है, तभी मनुष्यके हृदय और जीवनमें अीश्वरका प्रत्यक्ष अुद्‌भव होता है। अुसके पश्चात् जैसे जैसे अुसके प्रत्येक श्वासमें 'दासत्व' का भाव पुष्ट होता जाता है, वैसे वैसे अुसके हृदयसे प्रभुके स्थायी सहवासके लिअे प्रार्थना या पुकार निकलती है। और वही सच्ची प्रार्थना है। अिसीलिअे तो गांधीजी निरन्तर यह अभिलाषा रखते थे कि अुनके रोम-रोममें रामका वास हो। और गुरुदेवने भी गायत्रीका ध्यान धरकर अैसी ही आकांक्षा रखी थी:

"भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।"

अिसलिअे प्रत्येक व्यक्तिके अन्तरमें यही संगीत सदा सुनाअी पड़ता है:

"मैं तो तेरा दास,
तू ही मेरी आस, प्रभुजी!

है और वह तीनों कालका ज्ञाता है। अुसका अुद्देश्य यह है कि सम्पूर्ण सृष्टिका अुच्चसे अुच्चतर और अुच्चतरसे अुच्चतम आध्यात्मिक तथा नैतिक विकास हो। यह विकास-वृत्ति ही मनुष्यका मूल प्राण है। और अिस विकाससे ही मनुष्यकी आत्माको सच्चा, समग्र अथवा सम्पूर्ण सन्तोष मिल सकता है। अिसलिअे मनुष्यको अेक ही वस्तुकी विशेष आवश्यकता है। वह यह कि मनुष्य अखिल ब्रह्माण्डके पति अथवा अखिल ब्रह्माण्डकी शक्तिसे अैसी विनती या प्रार्थना करे कि वह अुसे आध्यात्मिक और नैतिक विकासका मार्ग बताये। अिसके सिवा, ब्रह्माण्डके पीछे रहे व्यक्ति या शक्तिकी अिच्छा भी यही है। अिसीलिअे मनुष्य प्रार्थना करता है: 'प्रभो, तेरी अिच्छा पूर्ण हो!'

"तू ही सब कुछ जाने प्रीतम!
तेरी अिच्छा पूर्ण हो।

तू ही सबका प्राणाधार;
तू ही जगका मूल आधार;
तू ही सर्व सकल करतार,
तेरी अिच्छा पूर्ण हो।

मान अपमान दोनोंमें प्रीतम!
सुख दुःखमें भी मेरे —
जनम मरणमें भी मेरे प्रीतम!
तेरी अिच्छा पूर्ण हो।

चांद सूरजको तू ही चलावे,
फूल फलको तू ही फलावे;
अणु परमाणु तू ही नचावे,
तेरी अिच्छा पूर्ण हो।"

परन्तु प्रभुकी अिच्छा पूर्ण हो, अिसके लिअे मनुष्यको अपनी स्वार्थपूर्ण अिच्छाका क्षय करना होगा। अिसीलिअे हर धर्मकी मूलभूत साधना मनुष्यके अहंकारको घटानेके लिअे होती है। "Die unto thyself so that He may live in thee." (तू अपनेमें मर जा, जिससे प्रभु तुझमें आ वसे।) जव 'ममत्व' की मृत्यु होती है, तभी मनुष्यके हृदय और जीवनमें अीश्वरका प्रत्यक्ष अुद्भव होता है। अुसके पश्चात् जैसे जैसे अुसके प्रत्येक श्वासमें 'दासत्व' का भाव पुष्ट होता जाता है, वैसे वैसे अुसके हृदयसे प्रभुके स्थायी सहवासके लिअे प्रार्थना या पुकार निकलती है। और वही सच्ची प्रार्थना है। अिसीलिअे तो गांधीजी निरन्तर यह अभिलाषा रखते थे कि अुनके रोम-रोममें रामका वास हो। और गुरुदेवने भी गायत्रीका ध्यान धरकर अैसी ही आकांक्षा रखी थी:

"भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।"

अिसलिअे प्रत्येक व्यक्तिके अन्तरमें यही संगीत सदा सुनाअी पड़ता है:

"मैं तो तेरा दास,
तू ही मेरी आस, प्रभुजी!

सब कुछ मैंने तुझसे पाया,
तो भी मिटी न प्यास;
अब तो अेक ही वरदान मांगूं,
वह है तेरा सहवास।

तू ही सब कुछ जाने, प्रभुजी !
फिर मैं क्यों करूं कयास?
जो तुझ भावे सो ही भला
फिर मैं क्यों होअूं निराश ?"

७. व्रत

मनुष्यके जीवनमें व्रतोंका क्या स्थान है? गांधीजी मानते थे कि व्रतोंका हमारे जीवनमें बड़े महत्त्वका स्थान है। यदि मनुष्यको अपना स्वधर्म जानना हो, तो अुसे अपने कुदरती स्वभावको संयममें रखनेकी कोशिश करनी होगी। अिसके विना अुसके जीवनमें कभी तटस्थता नहीं आयेगी। अिसी कारणसे हमारा व्यक्तिगत सांसारिक जीवन व्रतोंके द्वारा संयत बना दिया गया है। जिस प्रकार नदीके सतत वहनेवाले प्रवाहके लिअे दो किनारोंकी जरूरत होती है, अुसी प्रकार जीवनका प्रवाह सरल और निरन्तर गतिसे वहता रहे अिसके लिअे व्रतोंकी जरूरत रहती है। अथवा यों भी कहा जा सकता है कि जिस तरह पानीके प्रवाहका वेग बढ़ानेके लिअे नदीमें जगह

जगह बांध बांधने पड़ते हैं, अुसी तरह व्रतोंका पालन करनेसे जीवनकी गतिको वेग मिलता है ।

गुरुदेव भी जीवनमें व्रतोंकी आवश्यकताको स्वीकार करते थे । जब जब वे कोअी व्रत लेते थे, तब अुसका पालन अन्त तक करते थे । अुदाहरणके लिअे, यज्ञोपवीतके अवसर पर ब्राह्मणोंने दीक्षा देते समय अुनसे दिनमें कभी न सोनेका व्रत लेनेको कहा, क्योंकि दिनमें सोनेसे आलस्य बढ़ता है और आलस्य मनुष्यको —— विशेषतः ब्रह्मचारीको —— शोभा नहीं देता । गुरुदेवने वह व्रत लिया और जीवनमें कभी अुसका भंग नहीं किया । यहां तक कि जब गांधीजी १९४० में शांतिनिकेतन आये थे, तब गुरुदेवकी तबीयत अच्छी न होनेसे अुन्होंने गुरुदेवको सलाह दी कि वे दिनमें, खास करके भोजन करनेके बाद, थोड़ा आराम लें, तो अुन्हें लाभ होगा और अुनके शरीरमें ताजगी रहेगी । लेकिन गुरुदेवने कहा कि दिनमें न सोनेका मैंने व्रत लिया है । फिर अुन्होंने गांधीजीको वह बात सुनाअी, जब १२ वर्षकी आयुमें यज्ञोपवीतके समय अुन्होंने यह व्रत लिया था । सुनकर गांधीजी बोले : "अैसी स्थितिमें आप अपने व्रतका भंग करें, यह तो मैं आपसे नहीं कह सकता । परन्तु आपकी तबीयतको देखते हुअे अितनी सिफारिश तो मैं कर सकता हूं न ?"

गांधीजी अपने आश्रमवासियोंसे अमुक व्रत लेनेको कहते थे और वे व्रत अुनसे लिवाते भी थे । जब व्रत

लेनेवाले अपने व्रतका भंग करते, तो अुन्हें बड़ा दुःख होता था; परन्तु दूसरोंके व्रतभंगके लिअे वे स्वयं ही प्रायश्चित्त करते थे। गुरुदेव किसीसे व्रत लेनेकी सिफारिश नहीं करते थे, न अिसके लिअे किसी पर कभी दबाव डालते थे। वे अैसा मानते थे कि मनुष्य स्वयं समझ-बूझकर व्रत लेना चाहे तो ले, परन्तु दूसरे किसी मनुष्यके सामने अुसकी प्रतिज्ञा न करे। अुसे केवल अन्तरयामी प्रभुको साक्षी रखकर ही प्रतिज्ञा लेनी चाहिये। अन्य किसीको अितना भी जाननेकी जरूरत नहीं कि अमुक मनुष्यने अमुक व्रत लिया है। गुरुदेव यह भी कहते थे कि व्रत लेना ही हो तो प्रत्येक मनुष्य अपनी समझ और शक्तिके अनुसार तथा स्वेच्छासे व्रत ले। और किसी समय व्रतका भंग हो जाय, तो निराश हो जाने और अुसके लिअे प्रायश्चित्त करनेके बजाय अुसी व्रतके दृढ़ पालनके लिअे वह अपने प्रयत्नोंको दृढ़ बनाये, स्वयं अधिक सावधान और जाग्रत बने। व्रतभंग होनेसे अुसने कोअी बड़ा पाप किया है, अैसा विचार मनमें न लावे। और, कोअी अैसी अुग्र तपस्या न करे, जिससे जीवन-छन्दमें विघ्न अुत्पन्न हो और जिससे मनमें यह बात बैठ जाय कि जीवन अेक संग्राम है। वास्तवमें जीवन मधुर संगीत है, तालबद्ध नृत्य है। जीवनका विकास कमलके विकासके समान है। वह अपने छंन्दसे विकास करता है। जीवनका ध्येय अेक बार निश्चित हो जानेके बाद प्रत्येक मनुष्य स्वयं ही अुस ध्येयको सफल बनानेके

लिअे अमुक व्रतों या संयमोंका पालन करता है — जिस प्रकार कोअी कलाकार अपनी कृतिका सर्जन करते समय अमुक प्रकारका संयम पालता है ।

८. त्यागकी साधना

अेक बार अेक साधकने अेक संतसे पूछा : "महाराज, आपने गीता पढ़ी है ?" संतने जवाब दिया : "मैं अपढ़ आदमी गीता कैसे पढ़ सकता हूं ? फिर भी गीताका जो तात्पर्य है, अुसका अपने जीवनमें अमल करनेका प्रयत्न मैं जरूर करता हूं ।" अिस पर साधकने पूछा : "यह कैसे संभव हो सकता है, महाराज ? गीता पढ़े बिना अुसके तात्पर्यको आप कैसे समझ सके ?" संतने जवाब दिया : "भाअी, गीताका तात्पर्य है — त्याग । और त्यागवृत्तिका अपने जीवनमें विकास करनेका मैंने बार-बार प्रयत्न किया है । फिर भी मुझे अिसमें अभी तक सफलता नहीं मिली है ! परन्तु मेरा प्रयत्न तो हमेशा चलता ही रहता है ।"

संतकी बात सच है । प्रत्येक धर्मका मूल अंग त्यागवृत्ति ही है । प्रकृतिके राज्यमें मनुष्यको प्रवृत्तिके मार्ग पर चलना पड़ता है । अुस समय अुसकी अेक ही वासना प्रबल होती है : वस्तुओंका संग्रह करनेकी । परन्तु अुसके जीवनमें अेक समय अैसा भी आता है, जब वह प्रवृत्ति-मार्गका त्याग करके निवृत्ति-मार्ग पर चलना

आरंभ करता है। अुस दिनसे ही अुसकी सच्ची धर्म-साधनाका आरंभ होता है, अैसा कहा जा सकता है। परन्तु अंतमें वह अुन संग्रह की हुआी वस्तुओंके बीच रह कर भी जनक राजाकी तरह वैराग्यकी साधना कर सकता है।

अब प्रश्न यह अुठता है: मनुष्य त्यागवृत्तिका विकास करके क्या पाता है? अिसका अुत्तर अुपनिषदोंमें दिया गया है। त्यागवृत्तिका विकास करके मनुष्य ब्रह्मको प्राप्त करता है अथवा ब्रह्मके साथ अपना सच्चा सम्बन्ध स्थापित करता है। 'ब्रह्म'का अर्थ है जीवनमें पूर्णता या समग्रता। और यह पूर्णता या समग्रता तो मनुष्यकी आत्मामें ही समायी हुआी है। अिसलिअे त्यागवृत्तिका विकास करनेसे मनुष्य अपनी आत्माको पहचानता है। अुसकी आत्मा परमात्माका अेक अंश है।

गांधीजीने त्यागकी साधना गीतासे सीखी थी; गुरुदेवने यह साधना अुपनिषदोंसे सीखी थी। अिसीलिअे अन्तमें साधनाके क्षेत्रमें दोनों अेक-दूसरेका आलिंगन कर सके; अथवा दोनोंका मुख्य मंत्र अीशोपनिषद्‌का पहला श्लोक बन गया:

अीशावास्यम् अिदम् सर्वम् यत् किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुंजीथाः मा गृधः कस्यस्विद् धनम्॥

गीतामें त्यागकी साधनाके अलग अलग क्रम दिये गये हैं। अिसलिअे गांधीजीने गीताको माताका स्थान दिया। जिस प्रकार कोअी माता अपने बालकको अेक

अेक कदम चलना सिखाती है, अुसी प्रकार गीतामाताने गांधीजीको आध्यात्मिक मार्ग पर अेक अेक कदम चलना सिखाया था। परन्तु गुरुदेवने त्यागकी साधना अपने जीवनके अनुभवोंसे और कवित्वके कीमियासे सीखी थी। कवित्वके कीमियाका अर्थ है कविताकी रचनाका रहस्य। जिस प्रकार कवितामें कोअी विशिष्ट विचार होता है और कविताकी प्रत्येक पंक्ति, प्रत्येक शब्द, अुस विचारको प्रकट करता है, अुसी प्रकार मनुष्यके प्रत्येक कार्यमें, प्रत्येक विचारमें, प्रत्येक वृत्तिमें ब्रह्मका दर्शन या ब्रह्मकी झांकी होनी चाहिये। सामान्य शब्दोंमें कहें तो अिसका अर्थ अितना ही होता है कि दुनियामें मनुष्यको माल-मिल्कियतसे अधिक पूर्णता जीवनमें प्राप्त करनी चाहिये। "प्रभो, मेरा सब-कुछ मैं तुम्हारे चरणोंमें अर्पण करता हूं" — अैसी वृत्ति अथवा भावना रखनेसे मनुष्य त्यागवृत्तिका आसानीसे विकास कर सकता है। अिसीलिअे अन्तमें श्रीकृष्ण भगवान अर्जुनको यह अुपदेश देते हैं:

'सर्वधर्मान् परित्यज्य माम् अेकं शरणं व्रज।'

सब धर्मोंका त्याग करके तू मेरी शरणमें आ जा।

गीतामें साधनाका प्रत्येक क्रम बुद्धिसे समझाया गया है और अुपनिषदोंमें ध्यानसे। परन्तु दोनोंका हेतु तो अेक ही है — मनुष्य ममत्वको छोड़ कर ब्रह्ममें विलीन हो जाय।

९. कला

अेक बार अेक अध्यापकने अपने आसपास अिकट्ठे हुअे विद्यार्थियोंसे पूछा : "कलाका क्या अर्थ है ?"

सबसे छोटे विद्यार्थीने जवाब दिया : "कलाका अर्थ है—काल, आ।"

"और सुन्दरका अर्थ क्या है ?" अध्यापकने पूछा।

विद्यार्थीका अुत्तर था : "जिससे मनुष्यके भीतर 'सु' हो वह सुन्दर है।" छोटे विद्यार्थीके अिन दो अुत्तरोंमें कलाका पूर्ण रहस्य समाया हुआ है।

कोअी कलाकार अेक मूर्ति बनाता है। अिसके पीछे अुसका क्या अुद्देश्य हो सकता है? केवल यही कि जो वस्तु या व्यक्ति कालमें निवास करता है अुसका वह आवाहन करता है, अुसे निमंत्रित करता है। अर्थात् अुसके भीतर जो सत्य है अुसे रूप या आकार देकर कलाकार अमर बनाता है, आकर्षक बनाता है। जैसे किसी मांके दिलमें अपने बच्चेके लिअे प्रेम तो भरा ही होता है, परन्तु वह अदृश्य रूपमें रहता है। जब बच्चेको देखकर मांका प्रेम अुमड़ पड़ता है और वह बच्चेको चूम लेती है, तब मां अपने भीतरके अदृश्य प्रेमको चुम्बनके रूपमें आकार प्रदान करती है।

कलाकार अपनी कृतिको सुन्दर क्यों बनाता है? अिसके पीछे भी अेक ही अुद्देश्य हो सकता है। कलाकार

अपनी कृतिकी सुन्दरताको देखकर अपने हृदयको सुन्दर बनाना चाहता है। अगर अपनी सुन्दर कृतिको देखकर कलाकारका अन्तर सुन्दर न बने, तो वह सौन्दर्य अुसी तरह क्षणिक बन जाता है, जिस तरह सुन्दर पटाखोंमें आगकी चिनगारी लगानेसे वे क्षणभरमें राख हो जाते हैं।

गांधीजीका जीवन-मंत्र था : सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्; और गुरुदेवका जीवन-मंत्र था सुन्दरम्, शिवम्, सत्यम्। परन्तु दोनोंका मिलाप हुआ शिवम्के तीर्थ पर।

प्रभु तो त्रिमूर्ति है; अथवा दूसरे शब्दोंमें अुसके तीन आकार हैं: सत्यम् – शिवम् – सुन्दरम्। अिसलिअे मनुष्य चाहे सत्यम्का अुपासक हो, शिवम्का अुपासक हो अथवा सुन्दरम्का अुपासक हो, अन्तमें तो वह प्रभुको ही प्राप्त करता है।

गांधीजीको कुदरतकी कला बहुत प्रिय थी और गुरुदेवको भी वह बहुत प्रिय थी। गुरुदेवको मनुष्यकी निर्माण की हुअी कला, यदि कृति सुन्दर हो तो, अच्छी लगती थी। अुनकी यह श्रद्धा थी कि सौन्दर्यके द्वारा मनुष्यका हृदय किसी अनोखे ढंगसे, धीरे-धीरे, शिवम्को पहचानना और अुसे अपने जीवनमें अुतारना सीख लेता है।

गांधीजी जब किसी कलाकारकी सुन्दर कृतिको देखते थे, तब सबसे पहले अुनके हृदयमें यह प्रश्न अुठता था कि अिसका प्रयोजन क्या है? क्या यह कृति मेरे

जीवनको अधिक अुज्ज्वल बनानेमें मेरी मदद कर सकती है? परन्तु अिसका यह अर्थ नहीं कि यदि गांधीजीने विष्णुकी सुन्दर प्रस्तर-मूर्ति देखी होती, तो वे यह प्रश्न पूछते कि विष्णुका क्या अुपयोग है? क्या मैं अिससे मसाला पीस सकूंगा? नहीं, वे अैसा कभी न पूछते। वे विष्णुकी मूर्तिका सौन्दर्य देखकर अुसमें विष्णुका ध्यान कर सकते थे और अुसके द्वारा अपना जीवन अधिक अुज्ज्वल बना सकतें थे। और अुनके लिअे वह मूर्ति सुन्दर मानी जाती।

अिस तरह गांधीजी और गुरुदेवने कलाके दोनों पहलुओं — सौन्दर्य और अुपयोगिता — का समन्वय किया था।

अेक अन्य प्रकारसे भी अुन्होंने अिन दो पहलुओंका समन्वय किया था। कलाका विषय जीवन है और जीवनका विषय कला है। अथवा जीवनका अर्थ है अमुक आदर्श या सत्य। अिन आदर्शों या सत्योंको मनुष्य जब किसी भी तरह अपने जीवनमें अुतारता है, तब वह कलाकार बनता है। अिसीलिअे गुरुदेव बार-बार अिस बात पर जोर देते थे कि कला ही जीवन है; और गांधीजी भार-पूर्वक कहते थे कि जीवन ही कला है। अथवा यों कहा जा सकता है कि वे जीवनकी प्रत्येक कृतिमें कलाके तीन गुणोंका — कुशलता, सौन्दर्य और शुभका — समन्वय हुआ देखना चाहते थे।

गुरुदेवकी 'गीतांजलि' में छपी अेक कविता याद आती है जिसका भाव है: सन्ध्याका समय था। गांवकी अेक नववधू दीपक लेकर नदी-किनारे जा रही थी। रास्तेमें घना अंधकार फैला हुआ था। रास्ते पर चलनेवाले पथिकोंने अिस नववधूसे प्रार्थना करके कहा: "तुम हमें जरा दीपक बताओ; अुसके प्रकाशमें हम रास्ते पर अच्छी तरह चल सकेंगे।" वधूने अुत्तर दिया: "आज मैं अपना यह दीपक अुस तारा-मंडलको ही अर्पण करनेके लिअे नदी-किनारे जाती हूं, जो स्वयं ज्योतिर्मय है और आकाशमें कंठकी मालाकी तरह सुशोभित है। आज मैं अपने अिस छोटेसे दीपकको अुन ताराओंके प्रतिबिम्ब पर बहता छोड़ूंगी।"

कलाका अंतिम और श्रेष्ठ अुद्देश्य प्रभुको सर्वस्व अर्पण करनेका है। परन्तु अर्पण करनेसे पहले मनुष्यको जो कुछ सत्य, शिव और सुन्दर लगता है अुसका ध्यान धरना पड़ता है, अुसमें तल्लीन हो जाना पड़ता है। किसी भी वस्तु या व्यक्तिका ध्यान करनेका अर्थ है बार-बार अुसका गुणगान करना।

अिसीलिअे रस्किनने अेक जगह कहा है: "All art is praise." — सारी कला प्रशंसा ही है।

जीवनमें जो कुछ सर्वश्रेष्ठ है, पवित्र है, अुसकी सच्चा कलाकार अपनी कृति द्वारा प्रशंसा करता है।

१०. साहित्य

जीवन सूर्यके समान है । कला, साहित्य, दर्शन, विज्ञान आदि अुस सूर्यकी अलग अलग रंगीन किरणें हैं । अर्थात् अिनमें से हरअेक पर जीवनकी छाप पड़ती है तभी वह हितकारी हो सकता है । अैसा लगता है कि गांधीजी और गुरुदेव साहित्यको भी अिसी दृष्टिसे देखते थे । किसीने अुनसे पूछा होता कि साहित्यका क्या अर्थ है, तो अुन्होंने हंसते-हंसते किन्तु गंभीरतासे अुत्तर दिया होता: "साहित्य वह काल्पनिक अथवा वास्तविक कृति है, जिसका हेतु सबका हित या कल्याण है । साहित्यका अर्थ है सह-हित ।"

अिसी कारणसे गांधीजी और गुरुदेवने मध्ययुगके संतोंकी तरह अपनी प्रान्तीय भाषा गुजराती या बंगालीको पंडितोंके पंजेसे छुड़ाकर अुसे जन-साधारणके लिअे सरल और सुबोध बना दिया । सच्चा साहित्य भी सत्यकी तरह समाज-लक्षी होता है । वह सबको निमंत्रण देता है । अुसके सहभोजमें कोअी अछूतकी तरह बाहर खड़ा नहीं रहता ।

दोनोंको साहित्य-सर्जनकी प्रेरणा किसी राजाके दरबारसे या किसी अमीरकी ओरसे नहीं मिली । वे तो अपनी भाषाके द्वारा अुसीको व्यक्त करते थे, जो मनुष्य-

जातिकी चेतनामें स्फुरित होता है। वे अिस स्पन्दनको बाह्य रूप देते थे। मनुष्य अपना सच्चा रूप जिस तरह दर्पणमें देख सकता है, अुसी तरह अिन दोनोंका साहित्य अन्तरके स्पन्दनके प्रतिबिम्बके समान था। अपनी रचनाओं द्वारा गांधीजी और गुरुदेव पाठकसे मानो यह कहते थे: "भाअी पाठक, तुम जो कुछ पढ़ते हो अुसे तुम अपनेको पहचाननेका निमित्त बनाओ। अुसे अैसा निमित्त बनानेमें तुम्हें कोअी कठिनाअी न हो, अिसीलिअे हमने अपनी कृतियोंको आनन्ददायक भी बनाया है। अिसके सिवा, अगर हमारा साहित्य पढ़कर अुसमें तुम्हें कोअी बात अच्छी न लगे, तो भी यही समझना कि वह भी तुम्हारे भलेके लिअे ही लिखी गअी है। क्योंकि हमारा हेतु केवल यही है कि तुम अपना सच्चा हित समझ सको।"

कुछ लोग यह कह सकते हैं कि गुरुदेवका साहित्य अधिक कल्पना-प्रधान है और गांधीजीका साहित्य कम कल्पना-प्रधान है; अिसलिअे दोनोंके साहित्यमें बड़ा फर्क है। परन्तु अिस कथनका अर्थ यदि अैसा हो कि गुरुदेव और गांधीजी अपनी रचनाओंमें वास्तविकताका खयाल नहीं रखते थे तो यह गलत है। अुनकी वास्तविकता कुछ अलग ही प्रकारकी थी। अुनका आधार जीवनका सत्य था। और सत्यको जाननेके लिअे पासकी और दूरकी दोनों दृष्टियां आवश्यक होती हैं। गुरुदेव कल्पना द्वारा (कल्पनाका अर्थ शेखचिल्लीकी जैसी तरंगें नहीं, परन्तु

आत्माका आविर्भाव) और गांधीजी वुद्धि द्वारा (वुद्धिका अर्थ मनका भावावेश नहीं, परन्तु जाग्रत आत्माका विश्लेषण) प्रत्येक वस्तुको समझते थे और संयमके साथ अुसकी व्याख्या या आलेखन करते थे । आजके साहित्यमें जिसे वास्तविकता कहते हैं, अुसके वारेमें दोनोंका मत अेकसा मालूम होता है । वह मत गुरुदेवके शब्दोंमें दिया जाय तो : Realism is animalism — वास्तववाद या यथार्थवादका अर्थ है हैवानियत ।

अिस प्रकार कहनेका हेतु यह है कि सत्य और वास्तविकतामें गहरा भेद है । अेक फोटोग्राफरकी दृष्टिमें किसी वस्तुका सत्य है अुसकी हूवहू फोटो लेना; जव कि कलाकारकी दृष्टिमें अुस वस्तुके भीतर छिपे हुअे मूक प्राणको मूर्त रूप देनेका महत्त्व है ।

गांधीजी और गुरुदेवका साहित्य अेक कलाकारकी रचना है, न कि फोटोग्राफरका चित्र ।

११. शिक्षण

अेक समय अैसा था जब कि पश्चिममें और बादको भारतमें भी शिक्षाकी व्याख्या करते हुअे यह कहा जाता था कि शिक्षाका मूल अुद्देश्य Three R's (थ्री आर्स) है। अर्थात् विद्यार्थीको Reading — वाचन, Writing — लेखन और Arithmetic — गणित सिखानेमें शिक्षाका सारा अुद्देश्य पूरा हो जाता है! अिसके साथ साथ शिक्षकोंका भी माता-पिताके समान यह मत था कि विद्यार्थी मार खाये बिना विद्या नहीं सीख सकता। अिसीलिअे यूरोपमें कअी वर्षों तक यह कहावत प्रचलित थी कि :

'A woman, a child and a walnut-tree.
The more you beat them, the better they be.'

[स्त्री, बालक और अखरोटके पेड़को आप जितना अधिक पीटेंगे, अुतने ही वे अधिक अच्छे साबित होंगे।]

अिस नियमका अनुसरण करके जो शिक्षा-पद्धति तैयार की गअी थी, अुसमें प्रभुका स्थान कहीं नहीं था। और हो भी कैसे सकता था? क्योंकि प्रभुकी दृष्टिसे तो सीखनेके लिअे सबसे अुत्तम वातावरण प्रेमका ही होता है।

भारतमें लगभग पिछले १०० वर्षसे शिक्षित मनुष्य 'कलम-बाबू' कहलाता था, जिसका काम दफ्तरमें बैठकर केवल कलम चलाना रहता था। और जहां विचार और विवेक-शक्ति होनी चाहिये थी, वहां मानसिक गुलामी होती

थी। अिसके परिणाम-स्वरूप शिक्षित मनुष्य — जो अुस पर सत्ता चलाता था अुसीका — रवर-स्टैम्प वन जाता था। वह अिस तरह अपना परिचय करानेमें आनन्द लेता था: I am Mr. Ditto. (मैं वही हूं जो वे हैं।)

अैसी स्थिति देखकर गुरुदेवने शांतिनिकेतनकी स्थापना की। अुसका अुद्देश्य था विद्यार्थियोंको कुदरतके सान्निध्यमें वैठाकर और मनुष्यकी सेवा करके भगवानकी झांकी कराना। परन्तु अैसी झांकी आसानीसे तभी हो सकती है, जव कला और संगीत द्वारा आनन्दमय वातावरण खड़ा किया जाय।

शान्तिनिकेतनका आदर्श था दैनिक कामकाजमें और शिक्षा-पद्धतिमें विद्यार्थियोंको अिस तरह निवद्ध कर देना कि वे अपना सव काम स्वयं कर सकें और संयमका पालन करके अपने चरित्रका निर्माण कर सकें। संक्षेपमें अैसा कहा जा सकता है कि शान्तिनिकेतनका आदर्श यह था: Harmony of Three H's — of the heart, of the head and of the hand. अर्थात् हृदय, मस्तिष्क और हाथका समन्वय। अिस आदर्श और पश्चिमके आदर्शके बीचका भेद हम आसानीसे समझ सकते हैं।

पहलेकी शिक्षा-पद्धतिमें सारा भार मस्तिष्क पर दिया जाता था; हृदय और हाथका विकास करनेकी अुस शिक्षा-पद्धतिमें कोअी गुंजाअिश ही नहीं थी। आजके जमानेमें शिक्षा-का अुद्देश्य भी Three H's — थ्री अेच्स — हो सकता है। परन्तु दूसरे प्रकारसे: Hospitality to a new idea, Hospitality to a stranger and Hospitality to your own self

when you are alone.—अर्थात् शिक्षित मनुष्य वही कहा जा सकता है, जो किसी भी नये विचारका स्वागत कर सके, अनजान आदमीका आतिथ्य कर सकें और जब अकेला ही बैठा हो तब अपनी आत्माका भी आतिथ्य कर सके।

गुरुदेव तो कवि थे। अिसलिअे शांतिनिकेतनकी स्थापना हुअी तब अुन्होंने कला पर अधिक जोर दिया। परन्तु गांधीजी कर्मयोगी थे। अिसलिअे अुन्होंने कर्म पर अधिक जोर दिया। अिस कारणसे जब बुनियादी तालीमकी योजना बनाअी गअी, तब अुन्होंने शिक्षाका केन्द्र बनाया अुद्योगको। गांधीजीका यह मत था कि बालकोंको अपने हाथोंसे तरह तरहकी चीजें बनानेमें बड़ा आनन्द आता है।

अिस प्रकार गुरुदेव और गांधीजीने आनन्द द्वारा विद्यार्थियोंको शिक्षा देनेके सिद्धान्तको अमली रूप दिया। असलमें तो Joy of singing songs—गीत गानेका आनन्द और Joy of making things—वस्तुअें बनानेका आनन्द अेक ही है।

परन्तु बुनियादी तालीमकी योजना बनानेमें गांधीजीका अेक दूसरा अुद्देश्य भी मालूम होता है। वह अुद्देश्य है: विद्यार्थी चीजें बना कर अुनसे सम्बन्ध रखनेवाला ज्ञान प्राप्त करें और अुस ज्ञानको अपने आसपासके वातावरणके साथ जोड़ कर आत्मबोध ग्रहण करें। और गुरुदेव यह चाहते

थे कि विद्यार्थी कुदरतके सौन्दर्यके निकट रह कर तथा कलाकी कृतियां निर्माण करके प्रभुबोध ग्रहण करें ।

अिसके सिवा, दोनोंका यह अुद्देश्य भी मालूम होता है कि जो कुछ ज्ञान हम प्राप्त करते हैं, अुसके द्वारा किसी न किसी तरह हम पूर्ण रूपसे मानव-जातिकी सेवा कर सकते हैं । क्योंकि दोनोंका अैसा विश्वास था कि जीवनका सत्य मनुष्यके Self-fulfilment — आत्म-परितृप्तिमें है, Success — आर्थिक सिद्धिमें नहीं ।

दोनोंकी शिक्षामें से अन्तमें अेक ही ध्वनि निकलती है: "मनुष्य या विद्यार्थी अपनी ज्ञानशक्तिका विकास करके जनताकी सेवामें अुस शक्तिका अुपयोग करे और खुदको होनेवाले अर्थलाभका अुपभोग सिर्फ अपने स्वार्थके लिअे ही न करके जनताके कल्याणमें अुसका अुपयोग करना सीखे । और अैसा करके भगवान तथा जनताके साथ सच्चा तादात्म्य — अेकरूपता अनुभव करे ।"

१२. स्वराज्य

स्वराज्यका अर्थ है 'स्व'का राज्य । लेकिन यह 'स्व' क्या चीज है? 'स्व' मनुष्यका अहं नहीं है, किन्तु अुसकी आत्मा है । अिसीलिअे गांधीजीने स्वराज्य प्राप्त करनेकी साधना अथवा शक्तिको आत्मबलका नाम दिया है । और गुरुदेवने भी अेक स्थान पर कहा है कि स्वतंत्रताकी आत्मा आत्माकी स्वतंत्रतामें है । अिस परसे हम अनुमान लगा सकते हैं कि दोनोंकी दृष्टिमें स्वराज्य अेक आध्यात्मिक तत्त्व है । आर्थिक अुन्नति, सामाजिक अुन्नति और सांस्कृतिक अुन्नति ये सब अुस आध्यात्मिक तत्त्वके अलग अलग विकास हैं ।

गांधीजी कर्मयोगी थे; गुरुदेव कवि थे । अेकने अपनी कृतियों द्वारा हमें स्वराज्य या स्वतंत्रता प्राप्त करनेका प्रोत्साहन दिया; दूसरेने अुस प्रोत्साहनको स्थायी रूप देनेकी योजना हमें बताअी । अिसलिअे यदि हम यह कहें कि आजका भारत गांधीजी और गुरुदेवकी अेक संयुक्त कृति है, तो अिसमें थोड़ी भी अतिशयोक्ति नहीं होगी । यह सच है कि प्रत्येक महापुरुष जिस समाज, या मनुष्य-जातिके जीवन पर अच्छा प्रभाव डालता है, वह स्वयं भी अेक अैतिहासिक प्रवाहका वाहन होता है ।

अब प्रश्न यह अुठता है कि वह अैतिहासिक प्रवाह क्या है? अथवा अितिहास क्या है? अिस प्रश्नका सबसे सुन्दर अुत्तर अेक बार अेक छोटे बालकने दिया था । जब

अुससे पूछा गया: "अितिहास या हिस्टरी (History) का क्या अर्थ है?" तो अुसने अेक क्षणकी भी देर किये बिना अुत्तर दिया: "History is His story." (अितिहास अुसकी कहानी है।) बालकसे दूसरा प्रश्न किया गया: "Whose story?" (किसकी कहानी?) अुसने अुत्तर दिया: "God's story." (अीश्वरकी कहानी।) अिसलिअे अगर हम गहराअीमें अुतरकर जांच करें, तो पता चलेगा कि अितिहास अिस बातका अेक विस्तृत वृत्तान्त है कि अीश्वरकी अिच्छा जीवनमें, विशेषतः सामूहिक रूपमें, किस तरह प्रकट होती है।

मानव-अितिहासमें हम देखते हैं कि हर देशकी अुन्नतिके लिअे दो व्यक्तियोंकी खास जरूरत पड़ती है: अेक कवि और दूसरा कर्मयोगी। भारतवर्षने पिछले लगभग ८० वर्षोंमें स्वराज्य प्राप्त करनेके लिअे विदेशी हुकूमतके साथ जो लड़ाअियां लड़ीं, अुनमें अनेक देशभक्तोंने हिस्सा लिया। परन्तु सबसे बड़ा हिस्सा था गांधीजीका और गुरुदेवका। यदि स्वराज्य अेक आध्यात्मिक सत्य हो, तो अुस आध्यात्मिक सत्यको मनुष्य आत्मा या हृदयके द्वारा ही समझ सकता है। और आत्मा या हृदयका स्पर्श तो केवल गीत ही कर सकता है। क्योंकि गीत भी आत्माका ही आविष्कार है, आत्माका ही अुद्गार है। परन्तु गीतसे प्रोत्साहित और प्रेरित होकर सुननेवाला व्यक्ति कोअी अच्छा काम करना चाहता है। वह अच्छा काम कैसे किया जाय, यह तो कर्मयोगी ही बता सकता है।

अिसीलिअे गांधीजीने हमारे सामने रचनात्मक कार्यक्रम पेश किया ।

अेक बात और है । गांधीजी और गुरुदेव दोनों अिस बात पर विशेष जोर देते थे कि स्वराज्य या स्वतंत्रताका मुख्य अंग धर्म है । अिसका अर्थ यह हुआ कि जो स्वराज्यका अुपभोग करते हैं, अुन्हें अिस बातकी स्पष्ट कल्पना होनी चाहिये कि हमारा धर्म क्या है और अुस धर्मका पालन कैसे करना चाहिये । अुन्हें यह नहीं सोचना चाहिये कि स्वराज्यसे हमें क्या लाभ होनेवाला है । और यह बात बिलकुल ठीक है । अूपर कहा जा चुका है कि स्वराज्य अेक आध्यात्मिक तत्त्व है । और आध्यात्मिक जीवनका सर्व-प्रथम नियम है — देना, समर्पण करना ।

स्वराज्यका अर्थ है आत्म-समर्पण । आत्मा अैसी अमूल्य वस्तु है कि अुसका समर्पण करनेके लिअे किसी योग्य पात्रकी आवश्यकता होती है । वह योग्य पात्र मानव-जातिकी निष्काम सेवासे बढ़कर और क्या हो सकता है? और मानव-जातिकी सेवा तो भगवानकी सेवा हुअी । लेकिन यह भगवान कौन है? अिस प्रश्नके अुत्तरमें यहां मैं अेक अंग्रेज कविकी अेक पंक्ति ही अुद्धृत कर देता हूं :

"What is God? you, I and we all."

(प्रभु कौन? तुम, मैं और हम सब ।)

अिसलिअे स्वराज्य किसी खास व्यक्ति या जातिके स्वार्थके लिअे नहीं, किन्तु देशके सब लोगोंके लिअे है ।

स्वराज्य आकाशके समान व्यापक है । जिस प्रकार अेक ही आकाश विभिन्न प्रदेशों पर व्यापक रूपमें फैला हुआ होता है, अुसी प्रकार स्वराज्यका सूर्य जब चमकता है तब अुसका प्रकाश और ताप सब जगह फैलता है ।

१३. स्वदेशी

गांधीजी और गुरुदेव दोनों स्वदेशीके अुपासक और प्रचारक थे । अिसका कारण हम समझ सकते हैं । जो मनुष्य अेक बार अपने 'स्व' को यानी अपनी आत्माको पहचान लेता है और अुस आत्माके अलग अलग पहलुओंको जान लेता है, वह जिस प्रकार अपने सम्मानकी रक्षा करता है अुसी प्रकार अपने देशके सम्मानकी — जिसे हम स्वदेशी कहते हैं अुस स्वदेशीकी — रक्षा किये बिना नहीं रहता । जिस मनुष्यको अपने भीतर आत्माके दर्शन हो जाते हैं, अुसकी दृष्टिमें अुस आत्माका पहला बाह्य स्वरूप अपने पड़ोसी ही होते हैं । अिसीलिअे अेक महापुरुषने कहा है और अनेक धर्मशास्त्रोंमें भी यह विचार प्रकट किया गया है कि पहले मनुष्य प्रभुसे प्रेम करे और अुसके बाद अपने पड़ोसियोंसे प्रेम करे । प्रभु और पड़ोसीका अेकसाथ अुल्लेख करनेमें अेक विशेष और गूढ़ हेतु समाया हुआ है । जिसे आत्मज्ञान हुआ हो अुसकी सच्ची परीक्षा करनी हो, तो अुससे अेक ही प्रश्न पूछा जाय : "आपने अपनी आत्मामें प्रभुको प्रतिबिम्बित हुआ देखा है अैसा आप कहते

हैं; परन्तु अुसी प्रभुको क्या आप अपने पड़ोसीमें भी प्रतिविम्वित हुआ देखते हैं?" और यदि वह 'हां' कहे तथा अुसका कथन सच हो, तो हम यह अनुमान कर सकते हैं कि अुसे आत्मज्ञान हुआ है। और यह भी मान सकते हैं कि अुसका आत्मज्ञान अुसकी अपनी कल्पना ही नहीं है।

अिसी प्रकार कोअी व्यक्ति अगर यह दावा करे कि वह सारी मनुष्य-जातिको प्रेम करता है, तो अुसकी परीक्षा भी अेक प्रश्नसे हो सकती है: "आप कहते हैं कि आप सारी मनुष्य-जातिको प्रेम करते हैं; तो क्या आप अपने देशवासियोंसे प्रेम करते हैं? आप दूसरे देशोंकी चीजें और विचार तो पसन्द करते हैं; परन्तु क्या आपको अपने देशकी चीजें और विचार पसन्द हैं?" यदि वह 'हां' कहे तो समझना चाहिये कि मनुष्य-जातिके प्रति अुसका प्रेम सच्चा है।

जो मनुष्य धर्म-परायण होता है, अुसमें सबसे पहले अपने आसपासके लोगोंकी सेवा करनेकी अधिक अुमंग और अुत्साह होता है। अिसीलिअे गांधीजी और गुरुदेव जहां रहते थे वहींकी पहनने और खानेकी चीजें अकसर काममें लेते थे। अलबत्ता, गुरुदेव कभी कभी सौन्दर्यके वश होकर (वे कवि और कलाकार थे न!) विदेशकी चीजों और विचारोंको भी पसन्द करते थे। गांधीजी किसी समय देशकी बनी चीजोंमें कोअी दोष या अपूर्णता देखते, तो अपने देश और देशके लोगोंके लिअे प्रेम और

अेक अवस्था अैसी अवश्य आती है जब मनुष्य सच्चे हृदयसे अनुभव करता है कि सारी धरती अेक ही कुटुम्ब है (वसुधैव कुटुम्बकम्), जिसमें अपने-परायेका कोअी भेद नहीं है। परन्तु अैसे मनुष्य दुनियामें विरले ही होते हैं। सामान्य मनुष्यकी दृष्टि अपने कुटुम्ब, अपनी जाति या अपने देश तक ही सीमित रहती है। स्वदेशीका पालन मनुष्यकी देशभक्तिका अेक सच्चा मापदंड है।

१४. ग्राम-जीवन

गांव भारतकी संस्कृति और सभ्यताका मूल केन्द्र है। और सच्चा धन पैदा करनेका क्षेत्र — मेहनत-मशक्कत करके सादे जीवनके लायक कमाअी करनेका क्षेत्र — भी गांव ही है। जब जीवन सादा और सरल होता है, तब मनुष्यका मन स्वभावतः सन्तोष प्राप्त करता है। अुसकी लोभवृत्ति नियंत्रणमें रहती है। और जब मनुष्य अपनी लोभवृत्ति पर काबू पा लेता है, तब अुसका मन जीवनके गंभीर सत्यको आसानीसे समझ सकता है। अेक-दूसरेके साथ मनुष्यका जो आध्यात्मिक सम्बन्ध है अुसे वह पहचान सकता है। भगवानमें अुसका विश्वास जमता है और परस्पर प्रेम तथा सेवा अुसके जीवनके दो मुख्य आधार बन जाते हैं।

गांधीजी और गुरुदेव दोनों ग्राम-जीवनके महत्त्वको भलीभांति समझते थे। अिसीलिअे अिन दो महान विभूतियोंने

हमारे देशकी अुन्नतिका मार्ग समग्र ग्राम-जीवनके पुनरुद्धारमें देखा था। वे अैसा मानते थे कि राजनीतिक स्वतंत्रतासे रचनात्मक कार्यका अधिक महत्त्व है। अिसलिअे अुन्होंने रचनात्मक कार्य पर अधिक जोर दिया। गुरुदेवको ग्राम-जीवनकी अलग अलग दिशाओंका बड़ा अच्छा अनुभव था। क्योंकि लगभग २० वर्ष तक अुन्होंने अपने पिता महर्षि देवेन्द्रनाथकी जमींदारीकी देखभाल की थी। परन्तु गुरुदेव कवि-स्वभावके थे। अिसलिअे अुन्हें लगा कि गावोंका जीवन नीरस बन गया है, अिसका कारण यह है कि गांवके लोग जीवनमें आनन्द मनाना भूल गये हैं। नृत्य, संगीत, कथा-कीर्तन, अनेक प्रकारके गृह-अुद्योगों आदिसे गांवके लोग पुराने समयमें जो आनन्द अनुभव करते थे, वह सब आज खतम हो गया हैं। अुसके बदले आज गांवोंमें सर्वत्र अेक प्रकारका निराशाका वातावरण फैल गया है। अिस कारणसे गुरुदेवको लगा कि सबसे पहले ग्राम-जीवनमें आनन्दका प्रवाह फिरसे बहाना चाहिये।

ग्राम-जीवन कैसा है, अिसका खयाल गांधीजीको तब आया जब दक्षिण अफ्रीकासे लौटनेके बाद अुन्होंने अेक वर्ष तक सारे भारतकी यात्रा की और अुसके गांवोंकी हालतको अपनी आंखोंसे देखा। सारे देशकी यात्रा करनेके बाद अुनका यह विचार बना कि ग्राम-जीवनके नीरस और निराशामय बननेका कारण वहांके लोगोंकी भयंकर गरीबी है। अिसलिअे गांवके लोगोंकी आमदनीमें थोड़ी वृद्धि करनेका मार्ग खोजना अुन्हें अधिक महत्त्वका कार्य मालूम

हुआ। अिसके लिअे अुन्होंने लोगोंको 'चरखा-पुराण' का पाठ फ़िरसे सिखानेका निश्चय किया। और धीरे-धीरे ग्राम-जीवनके दूसरे पहलुओं पर भी अुन्होंने ध्यान दिया — जिस तरह गुरुदेवने गांवके लोगोंके जीवनमें आनन्दका संचार करनेके प्रश्न पर ध्यान दिया। अिसके वाद ग्राम-जीवनके दूसरे अनेक पहलुओंकी ओर भी अुनका ध्यान गया।

अिस प्रकार गांधीजी और गुरुदेवने पश्चिमकी भौतिक अुन्नतिसे मंत्रमुग्ध बन कर लुप्त होती जा रही भारतकी अितिहास-धाराको फिरसे अुसकी सच्ची दिशामें मोड़ा। वास्तवमें हमारे देशका कल्याण अिसीमें समाया हुआ है। अगर हम 'कल-काली'[1] की पूजा करने जायंगे, तो दब मरेंगे और अपनी सच्ची संस्कृति और सभ्यताको खो बैठेंगे। समग्र ग्राम-जीवनके अुद्धारमें ही देशका सात्त्विक आनंद और अुद्धार है।

---

१. यंत्ररूपी काली।

१५. समभाव

प्रत्येक मनुष्यका बिना किसी भेदभावके हृदयसे सच्चा आदर करना, अुसकी मानवताकी कदर करना — यह महापुरुषोंका अेक विशेष लक्षण होता है। अिसका कारण यह है कि वे प्रत्येक व्यक्तिमें अेक ही तत्त्व या शक्तिका दर्शन करते हैं, जो सर्वत्र विद्यमान है, जो सबमें बसी हुअी है। गुरु नानकके शब्दोंमें कहें तो :

'सबमें राम रह्यो अेकाकी,
सकल संग हमरी बन आअी।'

अिसीलिअे तो प्रभुके भक्त कहते हैं : "सब घट तीर्थ, हरिद्वार काहे जाअी ?" परन्तु अैसा अनुभव करना आसान नहीं है। यह कोअी थोड़े वर्षोंकी नहीं परन्तु अनेक जन्मोंकी साधनाका परिणाम और प्रभुके अपार अनुग्रहका फल होता है।

गांधीजी और गुरुदेवने पहले अपने भीतर प्रभुका अनुभव करनेका, अुसका स्पर्श पानेका प्रयत्न किया। बादमें दूसरे लोगोंमें प्रभुके दर्शन किये। प्रभुकी प्रीति, नीति और शुभ भावना — अिन तीनों प्रकारके रसायनसे अपनेको पवित्र बनाकर ही वे दूसरोंमें प्रभुके दर्शन कर सके।

हर मनुष्यमें प्रभुका वास है, अैसा दृढ़ विश्वास होनेके कारण ही अस्पृश्यता-निवारणके लिअे गांधीजी और गुरुदेव जीवन भर लड़ते रहे। गांधीजीके आश्रमकी तरह

गुरुदेवके शांतिनिकेतनमें भी आरम्भसे ही हर जाति या कौमके विद्यार्थी अथवा व्यक्तिको समान माना जाता था। गांधीजीकी तरह गुरुदेवको भी बहुतसे लोगोंने ताने मारे थे: "आप तो ब्राह्मण और भंगीको अेक ही आसन पर बैठाना चाहते हैं। अैसा कभी भला होता होगा?" परन्तु रूढ़ियोंके असरसे जड़ बने हुअे, समाजके विरोधकी परवाह न करके वे जिसे सत्य मानते थे अुसी पर अन्त तक डटे रहे।

गांधीजी और गुरुदेव केवल हिन्दू-मुसलमानकी ही अेकता नहीं चाहते थे, बल्कि सारी मानव-जातिकी अेकता चाहते थे। असका कारण भी अुनकी यह मान्यता ही थी कि मानवका सम्मान करना चाहिये, वरना अीश्वरका अपमान होगा। दोनों चाहते थे कि हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच — खास तौर पर हमारे देश भारतमें — प्रेम बढ़े। क्योंकि दोनोंको अिस बातकी प्रतीति हो चुकी थी कि मनमुटाव और वैरका फल बहुत कड़वा होता है। अतः दोनों जातियोंके बीच प्रेमभाव बढ़ानेका अुन्होंने भरसक प्रयत्न किया। परन्तु जहां राजनीतिके नाम पर घृणाका जहर फैलाया जाय और भाअीसे भाअीको अलग किया जाय, वहां प्रेमकी पुकारको कौन सुनता है?

गांधीजी और गुरुदेवका यही मानव-सम्मान अतिथियोंके स्वागत-सत्कारमें और रोगियोंकी सेवामें भी देखनेको मिलता था। जो लोग कभी साबरमती या सेवाग्राम आश्रम और शांतिनिकेतनमें मेहमान बनकर रहे हैं, वे

भलीभांति जानते हैं कि वहां अुनकी सुख-सुविधाका कितना ध्यान रखा जाता था। अुनकी हर तरहकी जरूरत, छोटीसे छोटी जरूरत भी, पूरी की जाती थी, ताकि अुन्हें पूरा आराम मिले। और किसी समय कोअी मेहमान बीमार पड़ जाता, तो अुसकी दवादारू तथा दूसरी सेवाका प्रबन्ध करनेके साथ गांधीजी और गुरुदेव दिनमें कितनी ही बार बीमारकी खबर पुछवाते और जब जब समय मिलता, तब तब स्वयं भी बीमारके पास आकर अुसे देख जाते। दोनों बीमारको धीरज बंधाने और शांति देनेके लिअे कोअी न कोअी मनबहलावकी बात करते और अुसको हंसाते थे। अिससे कुछ समयके लिअे तो बीमारका रोग मिट ही जाता था। बीमारके पास जाते समय वे किसी दिन अुसे खुश करनेके लिअे फूल नहीं ले जाते थे, क्योंकि फूल तोड़नेमें दोनोंके हृदयको आघात लगता था। वे मानते थे कि 'फूल तो झाड़ पर ही शोभा पाता है।' अिसका कारण यह है कि दोनों सौन्दर्यके सत्यनिष्ठ अुपासक थे। और सौन्दर्यकी व्याख्या किसीने क्या अैसी नहीं की है कि जो वस्तु जहां हो वह वहीं रहनी चाहिये?

१६. विश्व-बन्धुत्व

गांधीजी और गुरुदेव दोनों किसी अेक शहरके या अेक देशके निवासी नहीं थे। वे तो विश्व-नागरिक (citizens of the world) थे। अिसलिअे वे सारी संकुचित अथवा संकीर्ण भावनाओंसे मुक्त थे — अिसका कारण अुन दोनोंकी मुक्त आत्मायें थीं। अैसी आत्मायें जिनमें किसी भी प्रकारके भेदभावको स्थान नहीं होता। और यही सुसंस्कारी व्यक्तियोंका अेक विशेष लक्षण होता है।

अैसा होते हुअे भी वे अिस बातको पसन्द नहीं करते थे कि हमारे देशका कोअी विद्यार्थी बचपनमें दूसरे किसी देशमें जाकर अभ्यास करे। वे अैसा मानते थे कि हर व्यक्तिको सबसे पहले अपने देशकी संस्कृतिमें अवगाहन करना चाहिये — यानी अपनी संस्कृतिका गहरा अध्ययन करना चाहिये। अैसा करनेसे अुसे अिस संसारमें जीवन जीनेका अेक सच्चा आधार मिल जाता है, जिसके बिना अुसकी हालत धोबीके कुत्ते जैसी रहती है — 'न घरका न घाटका'।

अिस मान्यताके पीछे अेक गूढ़ सत्य है। प्रत्येक व्यक्तिका जन्म भगवानकी अिच्छासे ही किसी परिवार, जाति, और देशमें होता है। और यह अिच्छा प्रत्येक व्यक्तिके पूर्वजन्मके संस्कारोंके अनुरूप सहज कल्पित होती है। क्योंकि प्रत्येक जन्ममें अिन व्यक्तियोंकी अपनी जीवन-यात्रा

पुनः वहींसे आरम्भ करनी होती है, जहां अुसके पूर्वजन्ममें वह रुकी थी। पूर्वजन्ममें आत्मज्ञानका जितना अंश अुसने प्राप्त किया था, अुसके लिअे अधिक पोषण अुसे वर्तमान जीवनमें मिलता है। अिसीलिअे अुसका जन्म विशेष प्रकारके मानसिक और सांस्कृतिक वातावरणमें होता है। और यह वातावरण अुस व्यक्तिके लिअे सामान्यतः अनुकूल ही सिद्ध होता है।

अब जिस मानसिक और सांस्कृतिक वातावरणमें किसी व्यक्तिका जन्म होता है, अुस वातावरणका पूरा पूरा लाभ अुठानेके लिअे यह खास तौर पर जरूरी होता है कि वह व्यक्ति अपनी प्रौढ़ अवस्थासे पहले अुसी वातावरणमें रहे। किसी व्यक्तिके विकासके लिअे यह अुसी तरह आवश्यक होता है, जिस तरह किसी पौधेके अच्छी तरह बढ़नेके लिअे विशेष प्रकारकी जमीनकी आवश्यकता होती है।

फिर, छोटी अुमरमें अुस वातावरणकी छाप अुस पर अच्छी तरह पड़ सकती है, अुसे वह अपने जीवनमें अच्छी तरह अुतार सकता है, अिसलिअे अुसमें रहना अुसके लिअे लाभप्रद सिद्ध होता है।

कच्ची अुमरमें यदि कोअी विद्यार्थी या व्यक्ति विदेशमें पढ़ने अथवा रहने जाता है, तो वहांके वातावरणमें रहकर अुसकी खूबियोंको वह भलीभांति समझ नहीं सकता; और बुद्धिसे यदि समझ भी ले तो जीवनमें अुन्हें अुतारना बहुत कठिन हो जाता है। बहुत बार तो अैसा भी होता है

कि नये और अपरिचित वातावरणमें संस्कृति तथा चरित्रकी दृष्टिसे अुसका विकास मर जाता है, जैसे अेक देशका पौधा दूसरे देशकी आबहवामें सूख कर मर जाता है।

परन्तु गांधीजी और गुरुदेवके अैसे विरोधसे यदि हम यह समझ लें कि वे दूसरे देशोंकी संस्कृतिके विरोधी थे, तो यह बड़ी भूल होगी। अुन्होंने स्वयं तो सारे जगतकी भिन्न भिन्न संस्कृतियोंमें जो भी अच्छे तत्त्व हैं अुन सबको अपने जीवनमें अुतारा था। अितना ही नहीं, अैसा करके अुन्होंने अपनी संस्कृतिमें अनेक सुधार किये और अपने देशकी संस्कृतिके अच्छे तत्त्वोंका प्रभाव दूसरे देशोंकी संस्कृतियों पर डालनेमें वे सहायक सिद्ध हुअे। वे विरोध करते थे केवल कच्ची अुमरमें किसीको अपने मानसिक, सांस्कृतिक और धार्मिक वातावरणसे दूर या बाहर रखनेका।

अैसा कहा जाता है कि जो मनुष्य अपनी भाषा अच्छी तरह जानता है या अपने धर्मको अच्छी तरह समझता है और अुसका पालन करता है, वह दूसरी भाषायें आसानीसे सीख सकता है तथा दूसरे किसी भी धर्मकी खूबियां अथवा अुसके तत्त्व आसानीसे और अच्छी तरह समझ सकता है और अपने जीवनमें अुन्हें अुतार भी सकता है।

दीनबन्धु अेन्ड्रूज गांधीजी और गुरुदेवके घनिष्ठ मित्र थे। वे भी भारतके विद्यार्थियोंको कच्ची अुमरमें विदेश भेजनेका विरोध करते थे। अेक बार तो अिस

बातका वर्णन करते करते वे रो पड़े थे कि विलायतमें कच्ची अुमरके भारतीय विद्यार्थियोंके जीवनमें कैसा विगाड़ हुआ है और हो रहा है। अुन्होंने कहा था :

"I would plead earnestly with every Indian father and mother not to send their children abroad, even for higher study, when they are still young and immature and not firmly rooted in the religion and culture of their own country."

(मैं प्रत्येक भारतीय माता-पितासे प्रार्थना करता हूं कि जब तक अुनके बालक कच्ची अुमरके हों, दुनियावी ज्ञानसे अपरिचित हों तथा अपने देशके धर्म और संस्कृतिके रंगमें पूरी तरह रंग न गये हों, तब तक अुन्हें अूंचे अभ्यासके लिअे भी विदेश न भेजा जाय।)

१७. असहयोग

महापुरुषोंके अनेक गुणोंमें से अेक गुण यह होता है कि वे सबके लिअे मनमें अतिशय प्रेम रखते हैं। जब अिस बातका विचार आता है, तब कभी कभी आश्चर्य होता है कि गांधीजी और गुरुदेवने असहयोगकी कल्पना कैसे की होगी? अुन्हें यह विचार आया ही कैसे होगा? परन्तु थोड़ी गहराअीमें जानेसे मालूम होता है कि अुन्होंने असहयोग अनर्थके साथ करनेको कहा है, या अुस व्यक्तिके साथ करनेको कहा है जो अनर्थका प्रेरक है और जो अनर्थको टिकाये रखनेमें मदद करता है। अिस

दृष्टिसे देखने पर अब समझमें आता है कि गुरुदेवने १९०४में तथा गांधीजीने अुसके कुछ वर्ष बाद असहयोगकी योजना क्यों बनाअी थी। दुःखकी बात अितनी ही है कि बहुतसे लोग अिस योजनाके भीतर रही भावनाको अच्छी तरह समझे नहीं और अुन्होंने अिसे अेक भूल माना।

जिस समय असहयोगकी योजना बनी, अुस समय अिन दो महापुरुषोंको अिस बातका पूरा विश्वास हो चुका था कि जब अेक मनुष्य दूसरे मनुष्यको या अेक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रको गुलाम बनाकर रखता है, तब गुलामको अुसकी गुलामी प्राणहीन, आत्मघाती और अप्रामाणिक बना देती है। अिससे बड़ा अनर्थ दूसरा कोअी नहीं है। भगवानने मनुष्यको जन्मसे ही स्वतंत्रता प्रदान की है। अैसा न होता तो प्रत्येक बालक जन्मसे ही जंजीरोंमें जकड़ा हुआ रहता। दूसरे, भगवानने मनुष्योंको स्वेच्छाशक्ति प्रदान की है। क्या यह मनष्यकी स्वतंत्रताका प्रमाण नहीं है? संक्षेपमें, असहयोगकी योजनाके मूलमें यह विचार था कि गुलाम पहले मनसे यह भूल जाय कि वह गुलाम है; अिसके बाद अपनी अलग अलग शक्तियोंका विकास करता रहे, ताकि वह अपनी मनुष्यताको प्राप्त कर सके और अुस मनुष्यताके द्वारा अपनी, अपने देशकी और सारे जगतकी सच्ची सेवा कर सके।

अेक बार जब कोअी गुलाम कुछ समयके लिअे अपनी गुलामीको भूल जाता है, तब अुसे केवल अेक ही विचार सूझता है। वह विचार है: जो भी व्यक्ति या

जो भी वस्तु अुसे गुलामीकी जंजीरोंमें हमेशाके लिअे जकड़ रखना चाहती है, अथवा अैसा प्रयत्न करती है, अुसके साथ असहयोग करना मनुष्यका धर्म है। क्योंकि अैसा करनेसे ही समाजके जीवनको अूंचे स्तर पर ले जानेका मार्ग मनुष्यको मिलता है। परन्तु अिस अनर्थके साथ असहयोग करते समय अनर्थ करनेवाले व्यक्तिके लिअे हृदयमें जरा भी हिंसा या द्वेषका भाव नहीं रहना चाहिये। अिसका अेक कारण यह है कि किसी अनर्थका सामना करते हुअे अथवा अनर्थ करनेवालेका सामना करते हुअे मनुष्यको बार-बार अुस अनर्थका विचार आया करता है, जिससे वह आज नहीं तो कल अुस अनर्थका स्वयं आचरण करने लगता है। अिसी कारणसे महापुरुषोंने हमें बताया है कि असत्य या अनर्थका सामना सत्यसे, बुराअीका सामना भलाअीसे, हिंसाका सामना अहिंसासे, द्वेषका सामना प्रेमसे और क्रोधका सामना शांतिसे ही किया जा सकता है।

असहयोगकी योजनाका अेक दूसरा पहलू भी था और है। वह है परस्पर सहयोगका। हमारे देशमें विदेशी सरकारके साथ असहयोग किया गया, अुसका सच्चा हेतु यही था कि हमारे देशके लोग आपसमें अेक-दूसरेके साथ अधिक सहयोग करना सीखें। क्योंकि १५० वर्षकी गुलामीके फल-स्वरूप प्रत्येक भारतवासी गुलामीमें अितना डूब गया था कि अुसे दूसरोंके सुख-दुःखका खयाल भी नहीं आता था। गुरुदेव और गांधीजी अिस बातका

हमेशा खयाल रखते थे कि असहयोग-कालके बाद जब हम स्वतंत्र हो जायंगे, तब हमें सहयोगकी बड़ी जरूरत रहेगी। अतः वे अिस बात पर बहुत जोर देते थे कि देशवासियोंको अेक-दूसरेके साथ मिलकर काम करना सीखना चाहिये।

आज हम स्वतंत्र हैं। अब हमारे देशमें सहयोगकी अत्यन्त आवश्यकता है। अैसा हम करेंगे तभी गांधीजी और गुरुदेव दोनोंकी जीवन-तपस्या सफल होगी। भगवानकी कृपासे अिस सहयोगका पाठ हम जल्दी सीख लें और अुसे अपने दैनिक सामाजिक जीवनमें अुतारें, यही अन्तरकी अभिलाषा है।

१८. गृहस्थाश्रम

‘वैराग्यमें हमारी मुक्ति नहीं है।’

गांधीजी और गुरुदेव दोनोंका यही जीवन-मंत्र था। अुन्होंने प्राचीन कालके राजर्षियोंकी तरह संसारमें ही रह कर जगतका कार्य किया और मुक्ति प्राप्त की। अिसीलिअे अुन्होंने गृहस्थाश्रमके बन्धन भी प्रसन्नतासे स्वीकार किये।

गृहस्थाश्रम हमारे चार आश्रमोंमें सबसे मुख्य और महत्त्वपूर्ण आश्रम है। ब्रह्मचर्याश्रममें जिन सिद्धान्तोंमें विश्वास रखा जाता है और जिन संयमोंका पालन किया जाता है, अुन सबकी सच्ची परीक्षा गृहस्थाश्रममें होती

है। जंगलमें अेकाकी रह कर मनुष्य आसानीसे अवधूत बन सकता है, परन्तु सच्चा अवधूत तो वह है जो दुनियामें रह कर भी दुनियासे निर्लिप्त रह सके।

सच्चा गृहस्थाश्रम यह कला सीखनेकी अेक शाला है कि समाजमें अपना स्वार्थ कैसे कम किया जाय और दूसरोंके लिअे त्याग कैसे किया जाय। गृहस्थाश्रमकी सच्ची बुनियाद त्याग है, भोग नहीं। अिसलिअे जिस घरमें त्यागवृत्ति देखी जाती है, वह घर स्वर्गतुल्य है। और जिस घरमें भोगवृत्ति प्रबल हो जाती है, वह घर नरक-तुल्य बन जाता है। गृहस्थाश्रममें त्यागवृत्ति जैसे जैसे विकसित होती जाती है, वैसे वैसे संन्यास और वानप्रस्था-श्रमके बीज मनुष्यके जीवनमें गिरते जाते हैं; और ये बीज अुचित समय पर वृक्षका रूप लेकर फलदायी बनते हैं।

गुरुदेवकी अेक कवितामें यह विचार आता है कि अेक बार किसी मनुष्यने भगवानका परिचय प्राप्त करनेका निश्चय किया। अिसके लिअे अुसने अपना घर छोड़ देनेका फैसला किया। अेक रात वह घरसे निकल कर जंगलकी ओर चल पड़ा। जैसे जैसे वह घरसे दूर होता गया, वैसे वैसे वह अनुभव करता गया कि कोअी आकाशमें से बार बार अुससे कह रहा है: "तू घरसे जितना दूर होता जाता है, अुतना ही दूर तू मुझसे भी होता जाता है।" पहले तो अुसने सोचा कि कोअी शैतान ये शब्द बोल रहा है। परन्तु अन्तमें अुसे विश्वास हो गया कि यह

आकाशवाणी भगवानकी ही वाणी है। अिसलिअे वह घर लौट आया । कुछ समय बाद अुसने अपने घरमें ही प्रभुके स्पर्शका अनुभव किया ।

सच्ची मुक्ति हमारे अंतरकी अेक विशेष वृत्ति है, आत्माकी वृत्ति है । वह बाहरी आडम्बर नहीं है । जिस प्रकार कविताकी मुक्ति छंदके बन्धनमें होती है, अुसी प्रकार गृहस्थाश्रममें भी मनुष्य अपनेको त्यागके वन्धनमें बांधता है तभी अुसे मुक्ति मिलती है ।

गृहस्थाश्रमका अेक दूसरा गुण भी है। वह जीवनको संपूर्णताकी ओर ले जानेमें अत्यंत अुपयोगी सिद्ध होता है। यह संपूर्णता या समग्रता और किसी भी तरह प्राप्त नहीं होती । अेक बार दीनबन्धु अेन्ड्रूजने कहा था : "मुझे अेक ही बातका दुःख है । वह यह कि मैं अपने जीवनमें गृहस्थाश्रमकी सीखसे वंचित रह गया हूं । अुससे मेरे जीवनमें क्या कमी या दोष रह गया है, अिसे मैं ही जानता हूं । सारे वन्धनोंको तोड़ कर त्याग करना आसान है । परन्तु बन्धनोंमें बंधे रह कर त्याग करना बहुत ही कठिन होता है ।"

गृहस्थाश्रम पक्षीके घोंसले जैसा है । अुस घोंसलेमें रह कर भी पक्षी विशाल आकाशकी ओर देख सकता है । अिसीलिअे तो गृहस्थाश्रमका अितना बड़ा महत्त्व है ।

१९. दुःख

सन् १९४० के फरवरी महीनेमें गांधीजी दो दिनके लिअे शांतिनिकेतन आये थे। अेक शामको अुनकी अिच्छा गुरुदेवके कुछ भजन सुननेकी हुअी। अिसलिअे आश्रमके बंगाली संगीतके शिक्षकको बुलाया गया। अुन्होंने गुरुदेवके चार-पांच गीत पसन्द करके गाये। संगीत पूरा होनेके बाद गांधीजीने संगीत-शिक्षकसे अेक गीतका अर्थ पूछा। अुन्होंने अपनी समझके अनुसार अुस गीतका अर्थ समझाया। परन्तु गांधीजीको अुससे संतोष नहीं हुआ। फिर अुन्होंने अन्य दो-तीन भाअियोंसे अुस गीतके अर्थके बारेमें पूछा। वे भी गांधीजीको सन्तुष्ट नहीं कर सके। अन्तमें गांधीजीने अेक और भाअीसे अुस गीतका अर्थ समझानेको कहा। अुन भाअीका बंगाली भाषाका ज्ञान बहुत कच्चा था। अिसलिअे बड़े संकोचसे अुन्होंने अपनी सामान्य बुद्धिके अनुसार अुस गीतका अर्थ गांधीजीको समझाया। अुसे सुनकर गांधीजी थोड़ी देर शान्त रहे। फिर बोले: "मुझे भी यही अर्थ ठीक मालूम होता है!"

जिस गीतका अर्थ गांधीजीने पूछा था, अुसका केन्द्रीय विचार गुरुदेवकी चेतनामें अिस प्रकार रहा होगा: दुःख दूर करनेका अेक ही मार्ग है। वह यह कि छोटे दुःखको बड़े दुःखसे दूर किया जाय। दुःखसे दूर भागनेसे

अथवा दुःखसे अपनेको छिपानेसे दुःख नहीं मिटता, वह दूर नहीं होता।

गांधीजी और गुरुदेव दोनोंने अपने जीवनमें बड़े बड़े दुःख अुठाये थे। अिसलिअे वे दुःखके रहस्यको भलीभांति जानते-समझते थे। अिसी कारणसे दोनोंने अपने व्यक्तिगत दुःखको समष्टिके दुःखसे जीत लिया था। अथवा यों कहें कि अपने अल्प 'स्वम्' को अखिल ब्रह्माण्डके 'सर्वम्' में विलीन कर दिया था।

दुःख जब जब मनुष्य पर पड़ता है, तब तब अुसका अेक ही हेतु होता है: वह मनुष्यको किसी न किसी प्रकारकी संकीर्णतासे बाहर निकालना चाहता है और अुसे अधिकाधिक विकासकी ओर — व्यापकताकी ओर — ले जानेका प्रयत्न करता है। अिसीलिअे तो दुःख हमारा सच्चा मित्र है, दुश्मन नहीं। मानव-जीवनका मुख्य ध्येय ही व्यक्तित्वकी मर्यादासे बाहर निकल कर विस्तृत पथ पर आना है। मनुष्यका सम्बन्ध यदि जगतके साथ न होता, तो अुसका घर स्मशान जैसा बन जाता। थोड़ेमें यह कहा जा सकता है कि दुःख मनुष्यके 'अहं' को कम करता है। और जो वस्तु मनुष्यके 'अहं' को कम करती है, वह मनुष्यको विशुद्ध बनाती है। अिसीलिअे दुःखकी तुलना आगके साथ की जाती है। जिस प्रकार आग सोनेको तपाकर स्वच्छ और शुद्ध बना देती है, अुसी प्रकार दुःख मनुष्यके मन — हृदय — को तपाकर पवित्र और निर्मल बना देता है।

प्रेम-दीवानी मीराने गाया है : 'घायलकी गति घायल जाने'। मनुष्य दूसरेकी पीड़ाको समझ सके, अनुभव कर सके, अिसीलिअे अुसे जीवन-संग्राममें बार-बार 'घायल' होना पड़ता है। जिस क्षण वह दूसरे 'घायलों' की पीड़ाको अपनी पीड़ा समझने लगता है, अुसी क्षण वह अपना दुःख भूल जाता है और सच्चा 'वैष्णव-जन' बनता है।

भगवानके भक्त दुःखको अपने प्रियतमकी अंगूठी मानते हैं, जो अुन्हें प्रियतमकी याद दिलाती है और अुसकी पहचान कराती है। जब जब कोअी दुःख मनुष्य पर आता है, तब तब अुसके भीतर प्रभुका अेक ही सन्देश छिपा होता है : 'मैं आया हूं।'

गुरुदेवने तो 'गीतांजलि' में अेक स्थान पर अैसा भी कहा है कि प्रभुके चरणोंमें मनुष्यकी सच्ची भेंट अुसका अपना दुःख ही हो सकता है। दूसरी जिन जिन वस्तुओंसे वह प्रभुकी पूजा करता है, वे तो अुसे प्रभुकी ही दी हुअी होती हैं। गुरुदेव यह भी कहते हैं कि दुःखके द्वारा ही प्रभु जान सकता है कि 'मानव-रत्न' खरा है या खोटा। अेक बार अेक फकीरने मुझसे सच ही कहा था : 'बेटा, दर्देदिलकी दवा दर्द है; दुःखकी दवा दुःख ही है।'

२०. मृत्यु

कभी कभी मृत्युको ‘यमराज’ अथवा ‘धर्मराज’ के रूपमें सम्बोधित किया जाता है। असका अेक विशेष कारण है। मृत्युका विचार मनुष्यको संयममें रहना और धर्मके मार्ग पर चलना सिखाता है। असीलिअे आंतरिक दृष्टिसे मृत्यु भी भगवानकी अपार कृपाका संकेत बन जाती है।

गांधीजी जीवन और मरणको अेक ही सिक्केके दो पहलू कहते हैं। गुरुदेव मृत्युकी तुलना माताके साथ करते हुअे कहते हैं: “अेक स्तनसे हटा लेने पर शिशु डरसे रोने लगता है, परन्तु दूसरे ही क्षण मांके दूसरा स्तन मुंहमें दे देने पर वह आश्वस्त और शांत हो जाता है।”

जिस प्रकार सिक्केके दो पहलू हैं, परन्तु सिक्का तो अेक ही है, असी प्रकार मां तो आखिर अेक ही है। शिशु केवल स्थान बदलनेसे रोता है। असी प्रकार जीवन और मरण भी अस महान प्राणके — जो सर्वत्र और सब पदार्थोंमें अेक ही है — दो पहलू ही हैं। कहनेका मतलब यही है कि जीवनसे मरण भिन्न या अलग वस्तु नहीं है। दोनों महान प्राणके ही अंश हैं। अतः जीवनके समान मृत्युको भी ‘अमृतस्य छाया’ कहा गया है।

मृत्यु जीवनके प्रवाहका विराम नहीं है, किन्तु अस प्रवाहकी दिशामें थोड़ा परिवर्तन सूचित करती है। और यदि वह विराम ही हो तो अैसा विराम है, जिसकी

तुलना अुस विरामके साथ की जा सकती है, जो कलाकार अपना चित्र बनाते समय यह देखनेके लिअे बार-बार लेता है कि चित्रके रंगोंका छन्द — सुमेल — अच्छी तरह सध रहा है या नहीं। मनुष्यका जीवन भी प्रभुके निरन्तर बन रहे चित्रके समान है। अुसमें भी मृत्यु या विरामकी जरूरत रहती है, क्योंकि वह विराम चित्रको संपूर्ण बनानेमें सहायक होता है।

मृत्यु जीवनका अंत नहीं है, यह ज्ञान मनुष्यकी आन्तर-चेतनामें जन्मसे ही समाया हुआ रहता है। यदि अैसा न होता तो अुसकी आत्मा यह प्रार्थना कभी न कर सकती : "मृत्योर्मा अमृतं गमय।" (हे नाथ, महामृत्युमें से मुझे अमृतके समीप ले जा।) अिसलिअे मनुष्यको मृत्युसे घबराना नहीं चाहिये। और यदि सामान्य रूपमें हम अुससे डरते हों, तो अुसका अर्थ यह हुआ कि अिस भयकी जड़में अेक प्रकारका स्वार्थ या मोह है। मनुष्य स्वार्थ या ममतासे अंधा बनकर अपना सम्बन्ध दुनियाकी चीजोंके साथ और विशेषतः व्यक्तियोंके साथ जोड़ता है। अपनी मृत्युसे वह अिन चीजों या व्यक्तियोंसे अलग हो जायगा, अैसा विचार अुसे दुःखी बनाता है और अिसीलिअे अुसे मृत्युका भय लगता है। परन्तु हमारी अिस स्वार्थपूर्ण वृत्तिका नाश करनेके लिअे ही मृत्यु हमारे जीवनमें अेक सच्चे मित्रकी तरह हमारे साथ बनी रहती है।

मृत्यु अुस विराम-चिह्नके समान है, जो वाक्यका अर्थ समझनेमें या वाक्यकी रचना करनेमें लेखकका

सहायक बनता है। यदि वाक्यमें अैसे विराम-चिह्न न हों, तो वाक्य अच्छी तरह समझमें नहीं आता; अुसी तरह जीवनका रहस्य समझनेके लिअे मृत्यु आवश्यक है।

कली भी जब मर जाती है, तभी अुसमें से सुन्दर सुगंधित फूल खिलता है। फूलकी मृत्यु होने पर अुसमें से फल अुत्पन्न होता है। परन्तु अैसी मृत्यु तो केवल पूर्णताका आरंभ करनेवाला और अुसे प्रोत्साहन देनेवाला तत्त्व है। अिसलिअे मृत्युको समाप्ति नहीं कहा जा सकता, परन्तु सफलता ही कहना अुचित है। औरानके अेक कविने सच कहा है:

"जब धातुके रूपमें मेरी मृत्यु हुअी, तब मैं पौधा बन गया। जब पौधेके रूपमें मेरी मृत्यु हुअी, तब मैं पशु बन गया। जब पशुके रूपमें मेरी मृत्यु हुअी, तब मैं मनुष्य बन गया। जब मैं मनुष्यके रूपमें मृत्युको प्राप्त करूंगा, तब देवदूत बन जाअूंगा। जब देवदूतके रूपमें मेरी मृत्यु हो जायगी, तब मैं प्रभुत्वको प्राप्त करूंगा। अब आप ही बताअिये कि मृत्युके कारण मैं कब न्यून अथवा अपूर्ण हूं?"

गुजरातके प्रसिद्ध कवि और साहित्यकार श्री नरसिंहरावने भी कहा है: "मृत्यु अिस संसारमें किसी प्राणीके जीवनका अन्त नहीं करती। हमारे अधिकाधिक विकासकी भूमि तो दूसरी ही है; हमें वहीं जाना है।"

सन्त तुकारामने भी अुल्लासमें आकर गाया है: "मरण माझें मरून गेलें, मज केलें अमर" — मेरी मृत्यु मर गअी है और मुझे अमर बना गअी है।

मृत्युकी महिमा कहां तक गाअी जाय? अुसका कोअी पार है?

२१. हास्यरस

हास्य अेक प्रकारकी प्रार्थना है। क्योंकि जिस तरह मनुष्य प्रार्थनामें कुछ समयके लिअे अहंकारके आवेगसे मुक्त हो जाता है, अुसी प्रकार हास्यमें भी अुसे अिस आवेगसे मुक्ति मिल जाती है। और जिस प्रकार प्रार्थनासे मनुष्यका चिन्ताग्रस्त मन हलका हो जाता है, अुसी प्रकार हास्यसे भी अपने सिरका बोझ अुसे थोड़ा हलका हुआ लगता है। अतः यह कहा जा सकता है कि प्रार्थना और हास्य मनुष्यके दो फेफड़े हैं, जिस प्रकार किसी अधिक आबादीवाले बड़े नगरमें लोगोंके शारीरिक स्वास्थ्यकी रक्षाके लिअे खेल-कूद तथा घूमने-फिरनेके खुले स्थान और बाग-बगीचे अुसके फेफड़े होते हैं। जिस तरह किसी थके हुअे और मृतप्राय बने हुअे मनुष्यको प्राणवायु या ओज़ोन (Ozone) देनेकी डॉक्टर सिफारिश करते हैं, अुसी तरह महापुरुष अपने जीवनसे हमें प्रार्थना और हास्यका महत्त्व सिखाते हैं।

गुरुदेव और गांधीजीके जीवनमें भी यह चीज प्रत्यक्ष देखनेमें आती है। गांधीजी कहा करते थे कि

हास्यके विना वे पागल हो जाते और कामका जो भारी वोझ अुन्हें रोज अुठाना पड़ता था अुसे वे अुठा न पाते। यही वात गुरुदेव्को भी लागू होती है। वे भी हास्यके विना अपने जीवनका भार हलका न कर पाते। जिस प्रकार गांधीजीकी प्रतिदिनकी वातचीतमें हास्यकी तरंगें अुठती रहती थीं, अुसी प्रकार गुरुदेवके साहित्यमें हास्यरस वार-वार तरंगित होता देखनेमें आता है।

अेक वार अेक नौजवान अेक ज्ञानी पुरुषके पास जाकर वोला: "महाराज, मुझे आध्यात्मिक जीवन जीनेका मार्ग वताअिये।" ज्ञानी पुरुषने कहा: "भाअी, वाजारसे A Book of Jokes (मजेदार चुटकलोंकी पुस्तक) खरीद लाओ और अुसमें से रोज सुवह-शाम अेक अेक चुटकला पढ़ा करो।"

नौजवानको ज्ञानी पुरुषकी वात सुनकर आश्चर्य हुआ, क्योंकि वह अैसा मानता था कि आध्यात्मिक पुरुष सदा गंभीर रहते हैं और मुंह चढ़ा कर वैठते हैं!

परन्तु सत्य अिससे ठीक अुलटा है। सच्चे आध्यात्मिक और ज्ञानी पुरुषोंके जीवनमें हास्यरसका महत्त्वपूर्ण भाग होता है। प्रार्थनाके समान ही हास्यरस अुनका प्राण होता है।

हास्य मनुष्यको प्रभुकी ओरसे मिली हुअी अमूल्य भेंट है। कहा जाता है कि जिस मनुष्यमें संगीत सुननेकी शक्ति नहीं होती, वह छल-कपट करनेमें चतुर होता है; अुसी प्रकार जिस व्यक्तिमें हास्यका अभाव होता है, अुसमें प्रायः सच्ची सहानुभूति या सहिष्णुता नहीं होती।

प्रार्थनासे जिस प्रकार मनुष्यका मुख तेजस्वी हो जाता है, अुसी प्रकार हास्यसे भी मनुष्यके मुख पर प्रकाश फैल जाता है । जिस प्रकार प्रार्थनामें अूंच-नीचका भान नहीं होता, सभी लोग हमारी चेतनामें समान हो जाते हैं, अुसी प्रकार हास्यमें भी समानता अथवा अेकताका भाव पैदा होता है । अिसलिअे यह कहा जा सकता है कि : "Prayer is the laughter of the spirit; like humour it is the leveller and lever." — प्रार्थना आत्माका हास्य है; हास्य और प्रार्थना 'अेकमेव अद्वितीयम्' हैं; वह समानता स्थापित करनेवाला तत्त्व है और जीवनका अुच्चालन यंत्र — जीवनका भार अुठानेका साधन — है ।

२२. तन्दुरुस्ती

हिन्दीकी अेक प्रसिद्ध कहावत है : 'तन्दुरुस्ती हजार नियामत है' । अिसका अर्थ अैसा किया जाता है कि तन्दुरुस्ती मनुष्यको भगवानकी अेक अमूल्य देन है । परंतु दुःखकी बात यह है कि सामान्यतः मनुष्यको तन्दुरुस्तीकी जितनी चिन्ता और जितनी कदर करनी चाहिये अुतनी वह करता नहीं है । जब वह बीमार पड़ता है, तभी अुसे तन्दुरुस्तीकी कीमत समझमें आती है ।

परन्तु जो मनुष्य जीवनके हर क्षेत्रमें साधककी तरह अपना जीवन व्याप्त करना चाहता है, वह तन्दुरुस्तीका पूरा ध्यान रखता है । क्योंकि वह जानता है कि स्वस्थ

और तन्दुरुस्त शरीर कलाकारके स्वच्छ और सुन्दर चित्र — प्रतिकृति — के समान है। अुसकी आत्मा मनुष्यको सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम्का दर्शन — vision — कराती है। परन्तु अुस दर्शनको जीवनमें अुतारना अुसके मन और शरीर दोनोंका संयुक्त कार्य तथा धर्म है, जिस प्रकार कलाकारकी तूलिका सौन्दर्यके अुसके दर्शनको मूर्तरूप प्रदान करती है।

गांधीजी और गुरुदेव हमेशा अपनी तन्दुरुस्तीकी पूरी संभाल रखते थे। और तन्दुरुस्तीकी संभाल रखनेके लिअे 'अन्न' और 'मन' दोनोंका अच्छी तरह ध्यान रखते थे। कौनसी खुराक शरीरकी कौनसी क्रियाके लिअे अुपयोगी और अच्छी है, यह जाननेके लिअे वे तरह तरहके प्रयोग करते थे। थोड़ेमें कहें तो गांधीजीने खुराकमें 'लसुन-शास्त्र' का और गुरुदेवने 'नीम-शास्त्र' का अनुसरण किया। शाक-भाजी और फलोंमें जो कुदरती पोषक गुण होते हैं, अुनका नाश अुन्हें पकानेमें नहीं होना चाहिये — अिस सिद्धान्त या नियमका कभी भंग न हो, अिस बातका वे हमेशा ध्यान रखते थे।

परन्तु तन्दुरुस्तीका आधार सिर्फ 'अन्न-दुरुस्ती' पर नहीं रहता है। अुसका दूसरा आधार 'मन-दुरुस्ती' है। अर्थात् मनको स्वस्थ और शान्त रखने पर है। अिसीलिअे गांधीजी और गुरुदेव प्रार्थनामें तथा ध्यानमें नियमसे बैठते थे। प्रार्थना तथा ध्यानसे अुनके मन शान्त होते थे। और मनकी शान्ति अुनके शरीरोंको

तन्दुरुस्त रखनेमें सहायक होती थी। अिसी कारणसे अंग्रेजीमें अिस आशयकी अेक कहावत है कि मनुष्यका अुत्तम डॉक्टर दो चीजें हैं: आहार (Diet) और शांति (Quiet)।

परन्तु मानसिक शान्तिका असर मनुष्यके शरीर पर अेक हद तक ही पड़ सकता है। अिससे शरीरको अपनी शान्ति खोजनी पड़ती है। यानी शरीर जो अन्न ग्रहण करता है अुसके पचनेके लिअे मनुष्यको व्यायामकी जरूरत पड़ती है। अिसी कारणसे गांधीजी और गुरुदेव दोनों नियमित रूपसे व्यायाम करते थे, प्रतिदिन घूमने जाते थे और अपनी व्यक्तिगत सुविधाके लिअे जो काम हमें सामान्यतः करने पड़ते हैं वे सब काम दोनों अपने हाथसे ही करते थे। दूसरोंसे अैसे काम करानेमें अुन्हें सदा संकोच होता था। भगवान् बुद्धने अेक स्थान पर कहा है कि स्वास्थ्य साधुता है। साधुताका अर्थ है समग्रता। अिससे अुलटा वाक्य भी अितना ही सत्य है: Holiness is health (साधुता ही स्वास्थ्य है)। क्योंकि जिस मनुष्यका जीवन सम्पूर्ण है, वही वास्तवमें स्वस्थ और साधुता-मय है। अिसीलिअे सच्चा साधु स्वस्थ होता है और स्वस्थ चित्तवाला मनुष्य ही सच्चे अर्थमें साधु होता है। अिसका कारण यह है कि स्वास्थ्य प्राप्त करनेके लिअे केवल शारीरिक बल ही आवश्यक नहीं होता; अुसके लिअे मनकी शांति और आत्माका आनन्द भी आवश्यक होता है।

आत्माके आनन्दका अर्थ क्या है? अुसका अर्थ है— हृदयकी अुन्मुक्तता, जिसे Humour (हास्यरस) कहते हैं। जिस मनुष्यमें यह रस है, वह शरीरसे दुर्बल या रोगग्रस्त होते हुअे भी स्वस्थ रह सकता है। गांधीजी और गुरुदेवके स्वस्थ रहनेमें अुनके हास्यरसका बहुत बड़ा हाथ था।

परन्तु दोनोंकी तन्दुरुस्तीमें सबसे बड़ा हाथ था— कार्य और प्रवृत्तिका। दोनों दिनभर कार्यरत रहते थे। कारण यह है कि जिस प्रकार मनुष्यके शरीरको खुराक और हवा-पानीकी जरूरत रहती है, अुसी प्रकार अुसके प्राणको — आत्माको — प्रवृत्तिकी जरूरत रहती है। कराचीमें अेक फकीर था। अुसे जो कोअी भिक्षा देता, अुसको वह आशीर्वाद देता था: "तुम्हें ज्यादासे ज्यादा काम करनेको मिले!" जिस आदमीके पास कोअी काम नहीं होता, वह बुरे विचारोंकी ओर आसानीसे खिच जाता है। और बुरे विचारोंका असर मनुष्यकी तन्दुरुस्ती पर पड़े बिना नहीं रहता। अतः बुरे विचारोंसे बचनेके लिअे प्रवृत्तिके सिवा दूसरा कौनसा अुत्तम मार्ग हो सकता है? प्रवृत्ति ही अिसका अेकमात्र अुत्तम अुपाय है।

कहनेका मतलब अितना ही है कि तन्दुरुस्तीके लिअे केवल 'अन्न-दुरुस्ती', 'मन-दुरुस्ती' और 'आत्म-दुरुस्ती' की ही आवश्यकता नहीं होती, परन्तु काम और व्यायामकी भी अुतनी ही आवश्यकता होती है।

२३. जन्मदिन

दुनियाके लगभग सभी देशों और प्रजाओंमें महापुरुषोंका जन्मदिन मनानेकी प्रथा है। अतः अिस प्रथाके पीछे कोअी निश्चित हेतु रहा होना चाहिये। वह हेतु क्या हो सकता है? अिस प्रश्नका अुत्तर खोजते हुअे मनमें अनेक विचार अुठते हैं। परन्तु यहां केवल दो तीन विचारोंकी ही चर्चा करनी है।

मनुष्य-जन्म अेक अमूल्य रत्न है। वह अेक दैवी दान है, जो मनुष्यको करोड़ों वर्षोंके बाद जीवनके क्षेत्रमें अथवा प्राणोंके विशाल प्रांगणमें प्राप्त हुआ है। अैसे दुर्लभ दानका जो अच्छी तरह अुपयोग करते हैं — महापुरुष करते हैं अुसी तरह — वे अभिनन्दनके, आदरके तथा प्रेम और श्रद्धापूर्ण स्मरणके पात्र हैं। शुभ कर्म करके जो मनुष्य द्विज बनते हैं, अुनका यह दूसरा जन्म — सच्चा जन्म — भगवानके हृदयमें होता है; जिस तरह अुनका शारीरिक जन्म अुनकी माताके गर्भमें होता है। अैसे मनुष्योंके शुभ कर्मोंका ध्यान करनेसे साधारण आदमीको शुभ कर्म करनेकी प्रेरणा मिलती है। अिसलिअे महापुरुषोंके जन्मदिनको पर्वका रूप दिया जाता है।

परन्तु बहुत बार अैसे जन्मोत्सवोंके अवसर पर सामान्यतः महापुरुषोंका केवल गुणगान करके ही लोग

सन्तोष मान लेते हैं और जो महत्त्वकी वस्तु है अुसे भूल जाते हैं! अर्थात् लोग महापुरुषोंके शुभ कर्मोंको जारी रखनेका या वैसे ही दूसरे कर्म करनेका प्रयत्न नहीं करते। अिसका परिणाम यह होता है कि सामान्य जनता अुन्नतिके मार्ग पर अत्यन्त धीरे धीरे, चींटीकी चालसे, आगे वढ़ती है।

कर्म करनेवालेकी अपेक्षा कर्म वड़ा होता है, यह आध्यात्मिक जीवनका अेक प्रधान सत्य है। अिसीलिअे गांधीजीने अपने जन्मदिनको 'चरखा-जयंती' का नाम दिया था। और गुरुदेव हमेशा यह चाहते थे कि जो कुछ सुन्दर है अुसमें, अुसके सर्जनमें, मनुष्य अधिकसे अधिक जीवन-साफल्य प्राप्त करे।

प्रत्येक विचारशील व्यक्ति समझता है कि मनुष्यके जीवनका सच्चा माप यह नहीं है कि वह कितने वर्ष जिया या अुसने कितना नाम और धन कमाया, वल्कि सच्चा माप यह है कि अुसने मानव-जातिके जीवनका कितना भार हल्का किया। अतः जन्म-दिवसका सच्चा महत्त्व अिस वातमें है कि जो दिन जिस महापुरुषका जन्मदिन हो, अुस दिन अुस महापुरुषके आदर्शोंका, अुसके कार्योंका और अुसके अदम्य अुत्साहका विचार करना चाहिये; अिसके वाद यह देखना चाहिये कि हम स्वयं सेवाके मार्ग पर चल रहे हैं या स्वार्थके मार्ग पर, तथा अैसा व्रत लेना चाहिये कि अगले वर्ष हम सेवाके मार्ग पर चलनेका फिर

प्रयत्न करेंगे । सेवा द्वारा ही मनुष्य द्विज बन सकता है । अुसके जैसा जीवनको सफल बनानेका दूसरा कोअी मार्ग नहीं है । फिर भले यह सेवा 'सत्यम्' की हो, 'शिवम्' की हो अथवा 'सुन्दरम्' की हो ।

अिस प्रकार मनुष्य द्विज बनता है, तब वह विहंग-गति प्राप्त करता है और अनन्त आकाशकी ओर अुड़नेके लिअे व्याकुल हो जाता है । क्योंकि अनन्तमें ही वह प्रभुका सच्चा स्पर्श अनुभव कर सकता है । अिसलिअे गुरुदेवने अेक युवकके जन्मदिन पर जो शुभेच्छा भेजी थी, वही सर्वोत्तम शुभेच्छा है । अुन्होंने लिखा था :

"May your birthday bring to you a touch of the Eternal." (तुम्हारा जन्मदिन तुम्हें अनन्तका स्पर्श करावे ।)

महापुरुषोंके जन्मदिनका अुत्सव अनन्तका अैसा ही स्पर्श, अनन्तकी अैसी ही झांकी करा सकता है । अिसीलिअे अैसे जन्म-दिवस मनानेकी प्रथा मनुष्योंमें आरंभ हुअी होगी, अैसा मालूम होता है ।

२४. कुदरत

अेक अंग्रेज कविने कहा है कि "कुदरत भगवानकी हस्त-लिखित पुस्तक है।" अिसलिअे अिस पुस्तकमें जो कुछ लिखा है, अुसका अध्ययन करना मनुष्यके लिअे जरूरी है। अिस पुस्तकमें से वैज्ञानिकको जिस प्रकार विज्ञानके नियम प्राप्त होते हैं और कलाकारको सौन्दर्यकी रूपरेखा प्राप्त होती है, अुसी प्रकार हरअेक मनुष्यको अिस पुस्तकमें से कुछ न कुछ ज्ञान प्राप्त होता है।

परन्तु दुःखकी वात तो यह है कि वहुत वार कुदरतकी गोदमें वैठकर भी मनुष्य 'मां' का मुख नहीं देखता! अुसकी ओर वह लापरवाह रहता है। अथवा 'मां' के चरणोंमें वैठकर सिखावन नहीं लेता। अिसका परिणाम यह आता है कि अुसका जीवन सर्वांगीण नहीं वन पाता।

कुदरतका प्रभाव मनुष्यके जीवन पर अनेक तरहसे पड़ता है, यद्यपि अुसे वहुत वार अुस प्रभावका जाग्रत ज्ञान नहीं रहता। परन्तु अेक दिशामें तो अुसे कुदरतके प्रभावका सजीव ज्ञान देर-अवेर प्राप्त करना ही पड़ता है। मनुष्यके शरीर पर अिस कुदरतका ही प्रभाव होता है।

मनुष्यका शरीर पंच महाभूतोंका वना हुआ है। अिन पंच महाभूतोंके वारेमें अुसे अच्छी तरह ज्ञान प्राप्त करना

मित्र होते हैं, अुसी प्रकार पुरुष और स्त्री, नर और नारी दोनों प्रभुकी दृष्टिमें अेक-दूसरेके मित्र हैं; अथवा प्रभुकी यह शुभ कामना अवश्य होगी कि अिन दोनोंके बीच मित्रों जैसा गाढ़ सम्बन्ध अुत्पन्न हो।

अिसलिअे भिन्न भिन्न धर्मोंके शास्त्रोंकी मर्यादामें बंधे हुअे और बिना सोचे-विचारे शास्त्रोंकी आज्ञाका पालन करनेवाले धर्माचार्योंने वार-वार स्त्रीका पुरुषके शत्रुके रूपमें जो वर्णन किया है, वह अुनकी भूल है, भ्रम है और मिथ्यावाद है। जो लोग अैसा मत रखते हैं, अुनसे केवल अेक ही प्रश्न पूछा जाय: "आप कहते हैं कि स्त्री पुरुषकी शत्रु है। परन्तु आपकी माता भी तो अेक स्त्री ही है न?" और यदि वे अपनी माताके बारेमें भी यही मत बतायें, तो समझना चाहिये कि अुनके अिस विचार या दलीलमें ही कोअी विकार है।

अिसी विचार-दृष्टिसे देखें तो तुरन्त समझमें आ जाता है कि संसारके महात्माओं और महापुरुषोंने नारीको सदा पुरुषके समान ही नहीं, परन्तु अुससे ज्यादा अूंचा स्थान क्यों दिया है। प्रेमकी दृष्टिसे तो स्त्री या पुरुषके बारेमें अूंच-नीचका कभी विचार ही नहीं आता। अुस दृष्टिसे यदि कोअी विचार अुनके सम्बन्धमें आये या आना चाहिये, तो वह दोनोंकी समानताका ही हो सकता है।

अिसी प्रकार गांधीजी और गुरुदेव भी नारीको जीवनमें पुरुषकी सहगामिनी, सहधर्मिणी मानते हैं। वे दोनोंको अेक-दूसरेके पूरक और मित्र समझते हैं। गांधीजी

और गुरुदेवके लेखों तथा अन्य रचनाओंमें यह विचारसरणी स्पष्ट दिखाओी देती है। नारी केवल सभ्यता और संस्कृतिका निर्माण करनेवाली ही नहीं है; बल्कि समाजमें असका जो स्थान है वही सभ्यता और संस्कृतिका सच्चा मापदण्ड है। कभी कभी नारी सखीके रूपमें 'असंयम' दिखाती है, अैसा हम असके जीवन-अल्लासके बारेमें कहते हैं। परन्तु अिसके पीछे जो सत्य छिपा होता है, असे पुरुषको कभी भुलाना नहीं चाहिये। क्योंकि नारीके अस अत्साह या अल्लासमें केवल असके आत्म-समर्पण अथवा आत्म-प्रदानका ही बीज छिपा नहीं होता, परन्तु पुरुषको भी आत्म-समर्पणके मार्ग पर ले जानेकी शक्ति असमें रहती है। अिसीलिअे गुरुदेवने अेक बार कहा था — और अनके अन शब्दोंमें नारीके विषयमें गांधीजीका मत भी वास्तविक रूपमें प्रकट होता है — "It is not a charm, but a call." (नारी मुग्धा नहीं है, परन्तु अेक प्रेरणा है।)

सत्य तो यह है कि जब स्त्री और पुरुष यह समझ लेते हैं कि वे अेक-दूसरेको जीवन-सत्यकी दिशामें ले जानेके लिअे ही आये हैं, तब कौन बड़ा और कौन छोटा यह प्रश्न ही पैदा नहीं होता। जीवनकी प्रत्येक भूमिकामें अेकको दूसरेके साथ रहना है; तब वे अेक पक्षीके दो पंखोंके समान अथवा अेक गाड़ीके दो पहियोंके समान क्यों न रहें? और आध्यात्मिक दृष्टिसे भी देखें, तो कोअी किसीका अरि, शत्रु, दुश्मन नहीं है। प्रत्येक

व्यक्ति स्वयं अपना मित्र और शत्रु है । ‘आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ।’ दूसरा कोअी भी व्यक्ति अुसका मित्र या शत्रु नहीं हो सकता । ‘खुद चंगा तो जग चंगा ।’ यदि हम खुद भले हैं, तो सारा जग भला है । हमारे भीतर भलाअी हो तो अितना काफी है ।

थोड़ेमें, गांधीजी और गुरुदेवकी दृष्टिमें नारी न तो ‘अरि’ थी, और न ‘परी’ थी । परन्तु वह पुरुषके समान ‘हरि’ का अवतार थी, जिसका धर्म जगतको सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम्के सुमार्ग पर अधिकाधिक ले जानेका है ।

२६. आकाश-दर्शन

अेक जर्मन दार्शनिकने कहा है : “I believe in two things — the starry heaven and the moral law.” (मुझे दो वस्तुओंमें श्रद्धा है : सितारोंसे जड़ा हुआ आकाश और नैतिक नियम ।) विचार करने पर अैसा लगता है कि अिन दोनोंका अेक-दूसरेके साथ गहरा सम्बन्ध है । क्योंकि कभी कभी रातको अेकान्तमें बैठकर आकाशके तारोंका निरीक्षण करनेसे कल्पना द्वारा मनुष्यके मनमें अैसी श्रद्धा अुत्पन्न होती है कि जो नियम तारोंकी आत्मिक और आन्तरिक गतिको अंकुशमें रखता है, वही नियम मनुष्यकी आत्मिक और आन्तरिक गतिको भी अंकुशमें रखता है ।

अिसी कारणसे गांधीजी और गुरुदेव आकाश-दर्शनमें रस लेते थे अथवा और किसी कारणसे, यह निश्चित रूपसे कहना कठिन है। परन्तु अितना निश्चित है कि अुन्हें केवल आंखोंसे या दूरदर्शक यंत्र द्वारा आकाशके तारे देखनेमें अत्यन्त आनन्द आता था। अिस आनन्दका अेक कारण यह विचार भी रहा होगा कि जो कुछ महान है, भव्य है, अुसे देखकर होनेवाले आश्चर्यका अनुभव किया जाय। तारोंसे जड़ी झिलमिलाती दुनियाको देखकर अैसे आश्चर्यका अनुभव सभीको होता है। यदि किसीको न हो तो समझना चाहिये कि अुसके जीवन-विकासमें अवश्य कोअी दोष या अपूर्णता है।

आश्चर्य-भावनाके वश होकर मनुष्य यह विचार करने लगता है कि जिसने यह ज्योतिर्मय तारा-मंडल निर्माण किया है, वह कैसा कुशल कारीगर, कैसा श्रेष्ठ कलाकार होगा? वह कैसी विशाल विभूति होगी? अुसकी शक्ति कितनी महान होगी? अैसी सुन्दर सृष्टिकी रचना करनेमें अुसे कितना आनन्द आया होगा? यह सब होते हुअे भी अुसने कितनी खूबीसे अिस भव्य सर्जनके पीछे अपने आपको छिपा दिया है! और जब अुसकी कृतिमें अितनी शांति है, तो वह स्वयं कितना शांत होगा! अैसी विचारधारा मनुष्यके मनमें बहने लगती है। अिससे अुसके आनन्दका पार ही नहीं रहता। अिसका प्रमाण क्या है? मनुष्यका मुख अेक अद्भुत ज्योतिसे आलोकित हो अुठता है: "The light that was never on sea

or land." — वह प्रकाश अैसा होता है, जो धरती पर या समुद्र पर कहीं भी देखनेमें नहीं आता ।

परन्तु अधिक आश्चर्यकी बात तो यह है कि वह केवल बाह्य प्रकाश नहीं होता । वह मनुष्यकी आत्माकी आन्तरिक ज्योतिका प्रकाश होता है । अुसकी आत्मा परमात्माका अेक अंश है । और आकाशके तारे अुस परमात्माकी आनन्द-मालाके असंख्य मनके हैं । अिस प्रकार आकाश-दर्शन करनेसे मनुष्य थोड़े समयके लिअे तो आत्मा और परमात्माका अेक पवित्र संगम ही बन जाता है ।

गुरुदेव जब किसी कारणसे बहुत दुःखी हो जाते थे, तब सान्त्वना प्राप्त करनेके लिअे वे अकेले खुले मैदानमें बैठ जाते थे और लम्बे समय तक आकाशके तारोंका अवलोकन किया करते थे । अैसा करनेसे अुन्हें अकसर यह अनुभव होता था कि वे अिस विश्वमें अकेले नहीं हैं; आकाशके तारागण अुनके साथ सहानुभूति दिखाने और अुनमें शक्तिका संचार करनेके लिअे सदा तत्पर हैं । मनुष्य अपने दुःखसे घबरा कर अुसे बहुत बड़ा रूप देता है । परन्तु जब वह अनंत आकाशमें व्याप्त तारा-मंडलको देखता है, तब अुसे अनुभव होता है कि प्रभुकी अिस विशाल और विराट सृष्टिमें वह अेक तुच्छ-सा प्राणी है; अुसका दुःख समूची मानव-जातिके समग्र दुःखकी तुलनामें किसी भी गिनतीमें नहीं है ।

गांधीजी भी सदा खुलेमें आकाशके नीचे सोया करते थे। अुसके पीछे संभवतः अैसा ही कोअी रहस्य छिपा होना चाहिये। कौन जानता है कि तारागण मध्यरात्रिमें अुनकी आत्माको क्या मूक सन्देश सुनाते होंगे और प्रभुका कौनसा दिव्य दान — शांति, सात्त्विक विचार, सात्त्विक वृत्ति आदि — अुन्हें प्रदान करते होंगे? सच कहा जाय तो आकाश-दर्शन मनुष्यके हृदयमें प्रभुके आगमनका अेक दिव्य मार्ग है।

२७. शान्तिनिकेतन और सेवाग्राम

विशाल दृष्टिसे देखें तो आधुनिक भारतका अुदात्त ध्येयवाद और अुच्च महत्त्वाकांक्षाअें अिन दो प्रतीकोंमें समा जाती हैं: शान्तिनिकेतन और सेवाग्राम। अुन्नीसवीं सदीके अंतिम भागमें पश्चिम द्वारा स्वीकार किये हुअे मूल्य — जैसे व्यक्तिवाद, व्यापारवाद और साम्राज्यवाद — हमारे देशमें दाखिल की गअी शासन-नीतिमें और शिक्षा-पद्धतिमें विशेष रूपमें दिखाअी पड़ते थे। अिन मूल्योंके प्रति विरोध दिखानेके लिअे ही अिन दो संस्थाओंकी स्थापना की गअी थी।

शांतिनिकेतन, रोमनोंकी विद्यादेवी मिनर्वाके समान, कविकी मानस-सृष्टिमें से अुत्पन्न हुआ। जिस दिन गुरुदेव तीन छोटे बालकोंको साथ लेकर प्रकृतिके तथा अपने पड़ोसियोंके — मानव-वंशके बालकों जैसे आदिवासियोंके —

सान्निध्यमें पहुंचे और बालकोंके नवीन विकासकी संपूर्ण स्वरावलिके बीच अुनके खेल-कूदमें शरीक हुअे, अुसी दिन शांतिनिकेतनका आरम्भ हुआ और अुसी दिन अुन्होंने शिक्षकोंके समक्ष अेकीकरणकी मुहरवाली समग्र शिक्षाका तर्कशास्त्र रखा था ।

सेवाग्राम आश्रमको अथवा दक्षिण अफ्रीकामें स्थापित अुसके पूर्वरूपके समान फीनिक्स आश्रमको अथवा साबरमती आश्रमको अेक कुशल कारीगरने ओंट पर ओंट चुनकर खड़ा किया था । गांधीजी मानते थे कि ओमानदारीसे किया हुआ शारीरिक श्रम मानवके अस्तित्वका बुनियादी सिद्धांत है । अचल और अटल श्रद्धासे अुन्होंने जाना कि अैसा परिश्रम मनुष्यको प्रभुता और गौरव प्रदान करता है ।

समग्र जीवनका अद्वैत — अेकता — कविका दर्शन था; बदली हुअी परिस्थितियोंके अनुकूल अपने वन-आश्रममें अुस अेकता अथवा अेद्वैतको पूर्ण करनेका वे सतत प्रयत्न करते थे । अतः प्रत्येक मनुष्यके हृदयमें बसी हुअी अेकता — आंतरिक अैक्य — की भावनाके मार्गमें रुकावट डालनेवाली हर चीजको वहां अभ्यास, आत्म-संयम, सेवा और संगीतके द्वारा दूर किया जाता था ।

कृषक-तुल्य गांधीजी 'मेरे लिअे अेक कदम बस है' के सूत्र पर आधार रखनेवाले अपने अनुभव-सिद्ध तथा रचनात्मक तत्त्वज्ञानके द्वारा अैसे प्रत्येक गुणकी जाग्रत भावसे खेती करने लगे, जो अुनके अहंको धीरे-धीरे अिस

हद तक मिटानेमें सहायक हो कि वे सामान्य जनताके जीवनका स्पर्श कर सकें और अुसके साथ अेकरूप हो सकें।

संक्षेपमें कहें तो गुरुदेवका प्रेरक हेतु रहस्यवाद था, जब कि गांधीजीका प्रेरक हेतु वैराग्य-वृत्ति थी।

अितना तो स्पष्ट है कि व्यक्तिगत अथवा सामुदायिक आत्मशुद्धिके कठिन कार्यमें जीवनकी ये दोनों दृष्टियां और दोनों मार्ग सम्पूर्णतया आवश्यक हैं। क्योंकि हमें जीवनमें स्वतंत्रता तथा नियंत्रणकी, दर्शन तथा सद्‌गुणकी अेकसी ही जरूरत रहती है।

रहस्यवादी पुरुष सूर्यकी गरमी तथा वर्षामें खिलने-वाले पुष्पके समान है। अिसलिअे वह सबका स्वीकार करता है; किसीका अनादर नहीं करता। अेक प्रकारसे कहा जाय तो वह सर्वदा प्रकट होनेवाली जीवन-शोभाका साक्षी है।

तपस्वी पुरुष अुस सेवकके समान है, जो जूठे बरतनोंको अेक अेक करके तब तक घिसता और मांजता रहता है, जब तक वे पूरी तरह साफ होकर चमचमाने नहीं लगते; अथवा अुस सैनिकके समान है, जो अपनी अभिलाषा या आत्माके स्वप्नकी आकांक्षाके अधिकाधिक समीप जानेके लिअे पद-पद पर विघ्न-बाधाओंसे जूझता है।

पश्चिमकी बुद्धिवादी संस्कृतिका प्रवाह हमारे देशके अल्पसंख्यक बुद्धिजीवी शिक्षित वर्गोंमें सीमित रहते हुअे भी वह अपने साथ संशयवाद और दंभको लाया है। अिससे हमारे देशमें अेक प्रकारका 'सरलता और

स्वाभाविकतासे दूर जाकर कृत्रिम जीवन जीनेवाला अेक वर्ग अुत्पन्न हुआ। यह वर्ग प्रजाके चरित्र और व्यवहार पर अनुकूल और सुसंवादी रूपमें शासन करनेवाली हमारी प्राचीन परम्परासे विमुख रहा। शांतिनिकेतनके गायक तथा सेवाग्रामके कतवैयेने, अतीत कालके अपने जैसे समान विचारवाले देशबन्धुओं द्वारा आरम्भ किये हुअे कार्यका अनुसरण करके, पश्चिमकी धन-पूजक भौतिक संस्कृति और राजनीतिसे प्रभावित भारतीय नौजवान स्वधर्मका जो त्याग कर रहे थे अुसके खिलाफ क्रान्तिका झंडा फहराया। अिसके लिअे अुन्होंने अपनी सुख-सुविधाओंका और धन-वैभवका त्याग किया। कविने अपने अमीरी पालन-पोषण तथा जमींदारीके वातावरणमें गूंज़नेवाली अपनी सौन्दर्य-वंशीका धर्मकी तलवारके साथ अदला-बदला किया। बैरिस्टरने अपने अुज्ज्वल भविष्य और वकालतका त्याग करके कड़ी और रेतीली जमीनमें खेती करना शुरू किया। दोनों — कवि और बैरिस्टर — गौतम बुद्ध और ओसा मसीहके जैसी आत्म-समर्पणकी भावनाको अपना ध्येय बना कर अिस कार्यमें प्रवृत्त हुअे। गौतम बुद्ध और ओसा मसीहने 'महान अनाथ मानवता' की सेवाके लिअे अपने अपने सुलभ 'राज्यों' का त्याग किया था। गुरुदेव और गांधीजीने पुनः अेक बार युग-युगके तथा ऋषि-मुनियोंके शाश्वत सत्यका अुदाहरण अपने जीवन द्वारा प्रजाके सामने प्रस्तुत करके यह सिद्ध किया कि समर्पण मानवताके — नहीं, समग्र जीवनके — विकास और प्रगतिका बीज है। कविने गाया :

"मैं जब तुझे जानता हूं, तब मेरे लिअे कोअी पराया नहीं रह जाता, अेक भी द्वार बन्द नहीं रहता। हे प्रभो, मेरी अितनी प्रार्थना स्वीकार करना कि असंख्यकी क्रीड़ामें मैं अेकके स्पर्शके परम सुखको कभी न खोअूं।"

और अुन्होंने अिस 'अेकके स्पर्श'को साहित्य और कलाके क्षेत्रोंमें तथा शिक्षा और ग्राम-रचनाके क्षेत्रोंमें व्यक्त किया और अुसे तेजोमय बनाया।

कृषक और कतवैयेने 'असंख्यकी क्रीड़ा' में 'अेक' की अखंड प्रत्यक्षताको अपने पक्षमें स्थापित किया। गुरुदेवके शब्दोंमें कहें तो:

"जहां किसान जमीन जोतता है और जहां रास्ता बनानेवाला मजदूर पत्थर फोड़ता है, वहां प्रभु विद्यमान है। सूर्यकी प्रचंड धूपमें और बरसातकी मूसलाधार झड़ीमें वह प्रभु अुन लोगोंके साथ रहता है, जिनके कपड़े मिट्टी तथा धूलसे सन जाते हैं। तू अपना धार्मिक अंगरखा दूर फेंक दे और अुनकी तरह धूलवाली जमीन पर चला आ!"

सबको मोहित कर सके अैसी अपनी स्वर्गीय मुक्तिके मुकुटको दूर फेंककर दोनों महापुरुष जगतको अुन्होंने जिस स्थितिमें देखा था अुससे अधिक अच्छा बनाने और अपने पीछे छोड़ जानेके ध्येयसे जागतिक कार्योंमें लीन हो गये। 'गीतांजलि' में कविने गाया है:

"मुक्ति? मुक्ति तुझे कहां मिलेगी? हमारे स्वामीने स्वयं सर्जनके बन्धनको स्वीकार किया है; वह सदा हमारे साथ बंधा हुआ है।"

थोड़ेमें, आजकल 'प्रगति' के नाम पर जो कुछ चल रहा है और जिसमें जीवनके सर्वांगीण विकासका अभाव है, अुसके विरुद्ध शांतिनिकेतन और सेवाग्रामने संपूर्ण और सर्वांगीण विकासके लिअे आन्तरिक मानव-अभिलाषाको अधिक तीव्र बनाया। आत्मा तथा पदार्थमें संपूर्णताके अुत्तम और सत्यतम आविष्कारका अर्थ है सरलता। कविने किसी स्थान पर गाया है: "सरलता सम्पूर्णताकी मुखाकृति है।"

और क्या हमेशा अैसा ही नहीं हुआ है? पैगम्बर या कवि, अितिहासके सुविशाल आंगनमें से गुजरते हुअे, धर्मोपदेशक और कृषकके बिलकुल समीप अपनेको देखता है। आजके जमानेमें धर्माधिकारी अपने पवित्र धर्मको परिपूर्ण करनेमें असफल सिद्ध हुआ है और पैगम्बरने अभी तक दर्शन नहीं दिये हैं। तो भी अिनके स्थान पर सत्यके मन्दिरकी ओर साथ साथ जानेवाले कवि और कृषकका भव्य दर्शन करनेका सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ है। बहुत संभव है आनन्द और तपस्याके प्रदेशमें से गुजरते हुअे हमें सत्यके पवित्र दर्शन होते हैं। अेक प्रसंग पर कवि द्वारा प्रकट किये गये अुद्‌गारका यही अर्थ होता होगा। वह अुद्‌गार है: "शांतिनिकेतन सत्यके आनन्दको और सेवाग्राम सत्यकी तपस्याको मूर्तरूप प्रदान

करता है।" और सत्य या तो अैसा सुन्दर पक्षी है जिसके दो पंख हैं आनन्द और तपस्या; अथवा अैसा वृक्ष है जिसकी शाखा पर दो पक्षी बैठे हैं: आनन्द और तपस्या।

२८. प्रेम-प्रणाम

किसी शुभ और पवित्र घड़ीमें अनन्त तथा असीमके मन्दिरमें अुष:कालके समय सुवर्ण-घंट बजा और मन्दिरके बन्द द्वार खुल गये। अेकके बाद अेक सत्यके यात्री अुसमें प्रवेश करने लगे। मैं दूर अपनी मिट्टीकी सीमित कुटियाके प्रांगणमें बैठा बैठा यह भव्य दृश्य देख रहा था। देखते देखते मेरे मनमें अेक तृष्णा जागी: "मैं कब अिन यात्रियोंके मंडलमें प्रवेश करनेका अधिकार प्राप्त करूंगा?" मुझे तत्काल अपनी अयोग्यताका विचार आया और अैसा लगा कि मेरी यह तृष्णा प्रभुकी कृपाके बिना कभी भी शान्त नहीं हो सकेगी। अिसलिअे वर्षों तक मैं अिस अतृप्त तृष्णासे संतप्त रहा।

और फिर अेक शुभ क्षणमें प्रभुकी कृपा अिस तुच्छ जीव पर अुतरी। गांधीजी और गुरुदेवके साथ मेरा परिचय हुआ। अुनके चरण-कमलोंका स्पर्श करते ही मेरे हृदयमें यह आशा जागी कि ये दो महान विभूतियां अपने जीवन-सन्देश और जीवन-साधना द्वारा सत्य अथवा प्रभुके साथ — जो असीम और अनन्त है — मेरा परिचय करानेकी कृपा मुझ पर करेंगी।

असीम और अनन्त सत्यके साथ मेरा प्रत्यक्ष परिचय हो गया है, यह कहनेका दावा तो मैं कैसे कर सकता हूं? परन्तु अितना अवश्य मैं नम्रतासे कह सकता हूं कि गांधीजी और गुरुदेव अिस असीम और अनन्त सत्यकी दो खिड़कियां हैं। अुनके चरणोंके पास बैठकर अिन दो खिड़कियोंमें से मुझे असीम और अनन्तके —— जो दूर है और निकट भी है —— दर्शन कभी कभी हुअे हैं। यही कारण है कि लगभग पिछले चालीस वर्षोंसे मेरी चेतनामें, मध्ययुगके अेक भक्तकविके शब्दोंमें कहूं तो, निरन्तर यह स्वर गूंजता रहा है:

"हदसे हदमें दिन बीता जब,
भोग बहुत हम पाया;
हदसे अहदमें जब मैं डूबा,
तब ही आपा जाना (पाया)।"

थोड़ेमें कहूं तो गांधीजी और गुरुदेवने मेरी अन्तरकी और बाहरकी दृष्टिको जीवनमें जो कुछ प्रेय है अुसकी ओरसे जन्म-जन्मान्तरके श्रेयकी ओर मोड़ दिया। अैसी अपार कृपा अुन महापुरुषोंने अिस तुच्छ सत्य-पिपासु जीव पर की है। अिसलिअे मैं अुन्हें अपने साष्टांग प्रेम-प्रणाम करता हूं। भगवानसे प्रार्थना है कि गांधीजी और गुरुदेवकी दिव्य आत्मायें मुझे अैसा आशीर्वाद दें कि जीवन और जगतमें जो कुछ भी अनहद है, अुसके लिअे मेरी पिपासा दिन-प्रतिदिन अधिक तीव्र बने और मुझे दिन-रात तड़पाये।

'दर्दे-दीदार मुझे जलावे रातदिन रोम रोम।'
